08_jothe:Layout 1 7/25/2016 11:38 AM Page 107

प्राचीन हड़प्पा की सील में बैठे संभुसेक जिनके सर पर महिषासुर मुकुट है.

हमारे सार्वजनिक जीवन की सांस्कृतिक राजनीति में खलबली मचाने वाले महिषासुर-विमर्श के कारण हिंदू धर्म की मिथकीय संरचना और उस पर आधारित समाजशास्त्र के लिए ये बेचैनी के दिन हैं। एक नये इतिहास की खोज की जा रही है और मिथकीय पुनर्पाठ के प्रयास जारी हैं, ठीक उसी तरह जैसे कभी फुले, पेरियार और आम्बेडकर ने किया था। यह विमर्श विचारोत्तेजक भी है, और चुनौतीपूर्ण भी। लेकिन, यह कितना प्रामाणिक है? क्या इसमें समाज की संरचनाओं को प्रभावित करने की ताक़त है? क्या मिथकों के मुक़ाबले मिथक प्रस्तावित करके आज के ज़माने में समाज और संस्कृति की नयी इबारत लिखी जा सकती है? प्रश्नों के इर्द-गिर्द प्रतिक्रियाएँ आमंत्रित हैं।

महिषासुर-विमर्श

एक बार फिर मिथकीय पुनर्पाठ

संजय जोठे

महान गोण्डी दार्शनिक पारी कुपार लिंगो, जो बाघ के चर्म पर बैठे हैं, सिर पर महिषासुर मुकुट है, दाएँ हाथ से प्राचीन योग की बुद्धि मुद्रा बनाए हुए हैं और बाएँ हाथ में पवित्र गोण्डी धर्मचिह्न धारण किये हैं.

कुपार लिंगो के हाथ में नज़र आने वाला पवित्र गोण्डी धर्मचिह्न का वास्तविक वर्त्तमान रूप जो वास्तव में शिवलिंग का आदिरूप है.

आम्बेडकर ने अपनी विख्यात रचना *रिडल्स इन हिंदुइज़म* की शुरुआत में सवाल पूछा है कि कोई पारसी खुद को पारसी क्यों कहता है, या कोई ईसाई खुद को ईसाई क्यों कहता है। इस सवाल के लिए उसके पास एक स्पष्ट उत्तर होता है। यही सवाल आप किसी हिंदू से पूछिए कि वह हिंदू क्यों है? आम्बेडकर स्वयं इस प्रश्न से उपजने वाली उलझन के बारे में लिखते हैं कि इस सवाल पर सोचते हुए एक हिंदू चकरा जाएगा। वह नहीं बता सकेगा कि हिंदू होने का क्या अर्थ होता है और किस चीज़ में विश्वास रखने पर कोई हिंदू बनता है।[1]

दरअसल, सामी मूल के तीन मुख्य धर्मों यहूदी, ईसाइयत और इस्लाम में आंतरिक भेद कितने ही हों, लेकिन उनकी दुनिया भर में फैली आबादी स्वयं को यहूदी, ईसाई या मुस्लिम साबित करने के लिए ठोस और सर्वमान्य आधारों की तरफ़ संकेत करती है जो उनकी एक किताब, एक पैगम्बर या एक ईश्वर को ले कर है। इसी तरह

[1] आम्बेडकर (2009).

08_jothe:Layout 1 7/25/2016 11:38 AM Page 108

भारत में श्रमण परम्परा से उपजे बौद्ध और जैन धर्मों में भी यह सुविधा है। लेकिन भारत के सबसे प्रमुख धर्म हिंदू धर्म में एक किताब, एक पैगम्बर और एक भगवान का सिद्धांत काम नहीं करता। एक ही हिंदू परिवार में कोई योगी हो सकता है, कोई तांत्रिक हो सकता है, और कोई नास्तिक भी हो सकता है। यहाँ तक कि परिवार के भीतर दो विपरीत विश्वासों वाले लोग भी हो सकते हैं। इस तथ्य के अंदर कई छिपे हुए पहलू हैं जो इतिहास के इस मोड़ पर अधिक शोध और स्पष्टता की माँग करते हैं। विशेष रूप से भारत में स्वयं को हिंदू न मानने वाले लोगों की तरफ़ से उठ रहे तर्कों और तथ्यों के प्रकाश में अब हमें हिंदू धर्म के पूरे इतिहास और इसके सम्प्रदायों सहित इसके विराट मिथकशास्त्र पर तर्कपूर्ण दृष्टि से पुनर्विचार करना होगा।

यह पुनर्विचार महात्मा ज्योतिबा फुले ने आरम्भ किया। अपनी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पुस्तक *गुलामगीरी* में उन्होंने हिंदू मिथकों और उनके आधार पर प्रचारित मान्यताओं की कठोर निंदा की है और उन मिथक प्रतीकों में छिपे षड्यंत्रों को भी उजागर किया है।[2] डॉ. आम्बेडकर ने भी *रिडल्स इन हिंदुइज़्म* में स्पष्ट संदेश दिया है कि भारतीय शास्त्रकारों ने मिथकीय व्याख्याओं के आधार पर इस धर्म और इसके समाजशास्त्र का ढाँचा खड़ा किया है। डॉ. आम्बेडकर और ज्योतिबा फुले के अध्ययन को आधार बना कर और परवर्ती शोधकर्ताओं और लेखकों को देखें तो स्पष्ट होता जाता है कि इसमें से अधिकांश मिथकीय चरित्र और उनसे निकलने वाले संदेश किन्हीं सच्चाइयों को छिपा कर किन्हीं ग़लत तथ्यों को प्रचारित करने के लिए ही गढ़े गये हैं। विशेष रूप से देबी प्रसाद चट्टोपाध्याय, डी.डी. कोसंबी और गेल ओमवेट का अध्ययन स्पष्टता से बताता है कि भारतीय मिथकों ने कैसे आकार लिया और उनकी दिशा विशेष की मौलिक प्रेरणाएँ कहाँ निहित हैं।

अभी तक अनुमान और तर्क पर आधारित मान्यताओं को अब ज़मीनी आँकड़े मिलने लगे हैं। मिथकों के पुनर्पाठ की परम्परा स्थापित हो रही है। महिषासुर पर अपनी विवादास्पद लेकिन खोजपूर्ण किताब में प्रमोद रंजन कई पहलुओं से महिषासुर मिथक की एक अन्य व्याख्या की तरफ़ इशारा करते हैं।[3] इस किताब से किसी खोई हुई बहुजन संस्कृति की तरफ़ इशारा मिलता है। यह संकेत एक खो चुके आख्यान को उसकी पूर्णता में देखन-परखने का आह्वान करते हैं। दरअसल, इस देश में सदियों से साहित्यिक और दार्शनिक चौर्यकर्म चलता रहा है जिसे गहराई से देखने का प्रयास करना होगा कि किस प्रकार तथाकथित मुख्य धारा का हिंदू समाज या ब्राह्मणी धर्म-दर्शन असल में हिंदू समझे जाने वाले अधिकांश बहुजनों से चुरा कर उन्हीं के ख़िलाफ़ रचा गया है, और किस प्रकार इतिहास के हर मोड़ पर बहुजन समाज के नायकों और उनके शास्त्रों सहित उनके प्रतीकों और कर्मकाण्डों को भी चुरा कर उनका ब्राह्मणीकरण किया गया है।

भारत में इतिहास की बजाय मिथकीय पुराण क्यों लिखा गया?

किसी भी सभ्य समाज के पास एक लिखित और सुव्यवस्थित इतिहास होता है। यही उसके संगठित वर्तमान और उतने ही संगठित व सुपरिभाषित भविष्य का स्रोत भी होता है। एक विशेष अर्थ में इतिहास-बोध असल में संस्कृति-बोध से अनिवार्य रूप से जुड़ता है। इसीलिए यह माना जा सकता है कि इतिहास-बोध न केवल संस्कृति-बोध है बल्कि उससे भी आगे बढ़ कर वह किसी संस्कृति या समाज का नैतिकता-बोध या स्वयं न्याय-बोध भी है। लेकिन क्या भारत में ऐसा है? क्या भारत ने इतिहास लिखा है? या क्या भारत के मिथकीय इतिहास में उन्नत नैतिकता-बोध और न्याय-बोध जैसा कुछ है?

---

[2] रोज़ालिंड ओ'हैनलोन (1985).

[3] प्रमोद रंजन (2014).

08_jothe:Layout 1 7/25/2016 11:38 AM Page 109

डॉ. आम्बेडकर[4] की रिसर्च जिस तरफ़ इशारा करती है वह यही है कि इस देश की मूल परम्परा और मूल शासकों को धीरे-धीरे शिक्षा और व्यापार से वंचित करके समाज के सबसे निचले स्तर पर धकेला गया है। सामान्य सा तर्क है कि अगर इतिहास में एक संस्कृति और एक ही दर्शन का सातत्य है तो फिर इतिहास लिखना न केवल आसान होगा बल्कि ज़रूरी भी होगा। लेकिन अगर यह इतिहास किसी एक संस्कृति का नहीं, बल्कि आपस में लड़ रही अनेक संस्कृतियों का बिखरा इतिहास है तो इसका लेखन चयनात्मक ढंग से होगा। अगर ईमानदारी से और सैनिक बल से विजय प्राप्त करके पराजित संस्कृति को नष्ट किया गया है तो उस विजय को अपनी गाथाओं में अंकित किया जाएगा। ये गाथाएँ ईमानदार होती हैं और भविष्य को प्रेरित करती हैं। लेकिन अगर प्रतियोगी या मूलनिवासी संस्कृति को कपटपूर्वक नष्ट किया गया है तो उसका ईमानदार इतिहास लिखना मुश्किल होगा, क्योंकि ऐसा इतिहास-लेखन असल में विजेताओं ही को दुष्ट और धूर्त साबित करेगा। इसलिए ऐसे विजेताओं ने भारत में कभी इतिहास लिखा ही नहीं और जो मूलनिवासी जनों का इतिहास किसी अर्थ में उपलब्ध था उसे भी मिथकीय आख्यानों की बाढ़ में बहा कर ग़ायब कर दिया।

जिन आततायी लोगों और संस्कृति ने मूलनिवासी संस्कृति को छलपूर्वक नष्ट किया है,[5] उन्होंने व्यवस्थित रूप से अपने छल कर्म का इतिहास नहीं लिखा। उन्होंने हमेशा मिथक लिखे, लेकिन अपने मिथकों में इसके संकेत ज़रूर छोड़े हैं कि वे कितने अन्यायी, धूर्त और कपटी थे। सभी मिथकों में स्पष्टता से लिखा गया है कि किस तरह आर्यों ने मूलनिवासी शासकों को राक्षस या असुर नाम दिया, उनके साथ छल किया। मूलनिवासी शूरवीरों के ख़िलाफ़ उन्होंने अपनी सुंदर कन्याओं और स्त्रियों का कपटपूर्वक इस्तेमाल किया है। इस तरह उन्होंने न केवल मूलनिवासियों के प्रति घृणित व कायरतापूर्ण षड्यंत्र रचे, बल्कि यह भी दिखाया कि अपनी स्त्रियों सहित अन्य स्त्रियों की उनकी दृष्टि में क्या उपयोगिता रही है। विष्णु द्वारा मोहिनी रूप धारण करके देवों और असुरों की साझी मेहनत से उपजे अमृत को किस तरह असुरों से छीन कर देवों को पिला दिया गया था, यह आर्यों के मिथक साहित्य की अत्यंत प्रचलित घटना है।[6]

मूलनिवासी असुर जनजातीय समाज और लोकायत दर्शन

मूलनिवासी असुरों और आदिवासियों की समाज रचना बहुत हद तक मातृसत्तात्मक थी और उनके विश्वास प्रकृति-पूजकों के विश्वास थे। वे ईश्वर जैसी किसी सत्ता की बजाय प्रकृति की शक्ति में भरोसा करते हुए स्त्री की उर्वरता और प्रकृति या भूमि की उर्वरता में एक सीधा संबंध देखते थे। इसीलिए उनके अधिकांश त्यौहार स्त्री-केंद्रित थे और परिवार में स्त्री को पुरुषों से अधिक अधिकार मिले हुए थे। आज भी अधिकतर जनजातीय समाजों में मातृसत्तात्मक व्यवस्था के अवशेष देखे जा सकते हैं। मध्य प्रदेश के बालाघाट, छिंदवाड़ा, बेतूल, मालवा, निमाड़ सहित कई अन्य ज़िलों में गोण्ड, कोरकू, भील, बैगा जैसे आदिवासियों में विवाह और परिवार की व्यवस्था में स्त्रियों को अधिक अधिकार प्राप्त हैं।[7] कई अध्ययनों और प्रेक्षणों में बस्तर के मारिया या बायसन-हार्न मारिया आदिवासियों में घोटुल नामक संस्था के उल्लेख भी पाए जाते हैं। यह व्यवस्था असल में स्त्री-पुरुष दोनों को जीवनसाथी चुनने के समान अधिकार देती है। घोटुल नामक व्यवस्था कई समाजशास्त्रीय और मानवशास्त्रीय अर्थों में बस्तर के मुरियाओं, गोण्डों, बैगाओं और उत्तर पूर्व के नगाओं सहित

---

[4] आम्बेडकर (1970).

[5] धनंजय कीर, मालसे एवं फड़के (2006).

[6] जॉर्ज विलियम्स (2003) : 130.

[7] देबी प्रसाद चट्टोपाध्याय (1992).

08_jothe:Layout 1 7/25/2016 11:38 AM Page 110

बिहार के मुण्डाओं को आपस में जोड़ती है।[8]

इसी तरह प्राचीन जनजातीय समाज लोकायतिक चिंतन को मानने वाला समाज था जिसकी परिभाषा 'लोकेषु आयत:' के रूप में की गयी है। अर्थात् लोक का दर्शन या इस लोक का दर्शन जिसमें प्रकृति और उसकी शक्तियों को सर्वोपरि माना जाता है। शंकराचार्य ने भी लोकायत को 'प्राकृत जना:' का दर्शन मानते हुए उसे हीन दर्शन या भौतिकवादियों का दर्शन बताया है।[9] इस दर्शन में कृषि से जुड़े कर्मकाण्डों में स्त्री की भूमिका महत्त्वपूर्ण मानी गयी थी। इसीलिए प्राचीन जनजातियों में ग्राम देवियों सहित वन देवियों की मान्यता अधिक पाई जाती है। डॉ. आम्बेडकर ने भी अपनी रिसर्च में यह सवाल खड़े किये हैं कि भारत में देवियों और मातृदेवियों का उभार एक गहन पहेली है जिसके आधार पर इस देश के धर्म-दर्शन के उद्विकास के कई पहलू उजागर किये जा सकते हैं। इस अर्थ में चट्टोपाध्याय और डॉ. आम्बेडकर दोनों ही मातृसत्तात्मक परिवार और समाज व्यवस्था सहित ब्राह्मणी धर्म में देवियों की भूमिका के साथ प्राचीन भारतीय भौतिकवादी परम्पराओं को रख कर देखने का आग्रह करते हैं। चट्टोपाध्याय अपनी अकादमिक रिसर्च से वहाँ पहुँच रहे हैं, और डॉ. आम्बेडकर अपनी धर्म-दर्शन और धर्म के समाजशास्त्र को आधार बना कर उस निष्कर्ष तक आ रहे हैं।

आगे हम यह देखेंगे कि भौतिकवादी, श्रमण, नास्तिक, वेदविरोधी, मूलनिवासी, स्त्रीवादी और आम्बेडकरवादी विचारक सब के सब अपने-अपने और अलग-अलग प्रस्थान बिंदुओं से यात्रा करते हुए भी एक साझे निष्कर्ष तक पहुँच रहे हैं। वे सब के सब अनिवार्य रूप से ब्राह्मणवाद को मूल भारतीय भौतिकवादी और मातृसत्तात्मक संस्कृति के ख़िलाफ़ खड़ी की गयी प्रतिसंस्कृति निरूपित करते हैं। इसका सीधा अर्थ है कि वर्तमान में जो दलित, मूलनिवासी या स्त्रीवादी आंदोलन हैं, वे जिस संस्कृति का नक़्शा बना रहे हैं या खोज कर रहे हैं, वही असल में इस देश की प्राचीन और प्रगतिशील और मूल संस्कृति थी जिसके ख़िलाफ़ षड्यंत्रपूर्वक ब्राह्मणवादी और भाववादी दर्शन पर आधारित प्रति-संस्कृति खड़ी की गयी है।

देव-असुर संग्राम, ब्राह्मण-क्षत्रिय या ब्राह्मण-बौद्ध संघर्ष

प्राचीन कोयवंशीय गोण्डों, असुरों और बौद्धों को एक ही दर्शन के हिस्से के रूप में देखना न केवल तर्कपूर्ण है बल्कि अब आवश्यक भी होता जा रहा है। भारतीय मिथक साहित्य को वास्तविक इतिहास की हत्या करने वाली साज़िश की तरह देखने की आवश्यकता है। मिथक असल में वैकल्पिक इतिहास प्रस्तुत करता है जो गूढ़ और चयनात्मक होता है इसीलिए उसके प्रतीकों और रूपकों को एक सपाट इतिहास-दृष्टि के सहारे नहीं बल्कि दार्शनिक व सामाजिक मान्यताओं में उभर रहे पुरस्कार और वर्जनाओं के मनोविज्ञान के साथ रख कर देखना चाहिए।[10] पुरानी संस्कृतियों को मिटाने के लिए रचे गये इन मिथकों में गहरी समानताएँ है। यह समानता कोयवंशी गोण्डों के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण नायक 'संभूसेक' सहित बाद में असुरों और बौद्धों के ख़िलाफ़ रचे गये मिथकों में एकदम साफ़ नज़र आती है। ऐसी समानताएँ सिद्ध करती हैं कि एक आततायी संस्कृति ने किसी प्राचीन संस्कृति के वाहकों को छलपूर्वक नष्ट किया था। इस बात का स्पष्ट उल्लेख न सिर्फ़ ज्योतिबा फुले और आम्बेडकर के चिंतन में मिलता है, बल्कि जनजातीय समाज से आने वाले विद्वानों और धार्मिक नेताओं से भी यही

---

[8] वॉन फ़्यूरेर एवं अन्य (1982).

[9] देबी प्रसाद चट्टोपाध्याय (1992).

[10] लवली गोस्वामी (2014).

08_jothe:Layout 1 7/25/2016 11:38 AM Page 111

मध्य प्रदेश के छिंदवाड़ा में जुन्नारदेव विशाला मंदिर के बाहर का संकेत चिह्न. इसी मंदिर के पास शिव का नया बड़ा मंदिर बन चुका है और स्थानीय मिथकों में जुन्नारदेव शिव की तरह मान लिए गये हैं.

गोण्डों की वाचिक परम्परा में संभुसेक का उल्लेख है जो बाद में हिंदुओं के महादेव बन जाते हैं। ... आर्यों का देव-असुर संग्राम असल में ब्राह्मण आर्यों द्वारा गोण्डी संस्कृति और गोण्डी देवताओं को विशेषकर संभुसेक को आत्मसात् कर महादेव बना देने के बाद में आकार ले रहा है। इसीलिए देव-असुर संग्राम के ब्राह्मणवादी संस्करण में अक्सर ही महादेव या शंभू का ज़िक्र आता है जो देवताओं को बचाने के लिए स्वयं युद्ध में उतरते हैं या ब्रह्मा या विष्णु या अन्य किसी देवी देवता के ज़रिये आर्यों या देवों की मदद करते हैं।

सूत्र प्राप्त होता है। इनमें एक नया और महत्त्वपूर्ण नाम है डॉ. मोतिरावण कंगाली (1949-2015)। डॉ. कंगाली गोण्ड समाज की धार्मिक परम्पराओं और भाषाओं के विद्वान थे। डॉ. कंगाली की स्थापनाओं और गोण्डी मिथकों सहित लोक-कथाओं आदि के अर्थों को हम विस्तार में आगे पढ़ेंगे। भारतीय दार्शनिक या समाजशास्त्रीय अध्ययनों में 'गोण्डी पुनेम' (गोण्डी धर्म या दर्शन) की तरफ़ से मिल रहे सबूतों को शायद पहले कभी इस अर्थ में नहीं देखा गया है। इसीलिए हम गोण्डी धर्म व दर्शन की मान्यताओं और उनसे मिल रहे सबूतों को अलग से विस्तारपूर्वक देखेंगे।

भारत के अनेक राज्यों में एक समान समाज-मनोवैज्ञानिक आशय लिए हुए सैकड़ों दंत कथाएँ हैं जिनमें देवों और असुरों के संघर्ष का ज़िक्र आता है। यह संघर्ष असल में ब्राह्मणों और क्षत्रियों का संघर्ष रहा है[11] और भारतीय इतिहास के हर निर्णायक मोड़ पर उठ खड़ा होता है। इसके बड़े दायरे में न सिर्फ़ ब्राह्मण-क्षत्रिय और ब्राह्मण-शूद्र की पहेली के हल छिपे हुए हैं, बल्कि इसी में दलितों और मूलनिवासियों सहित स्त्रियों की दुर्दशा की पहेली का हल भी छिपा हुआ है। यह हल या यह निष्पत्ति आर्यों को असभ्य, युद्धप्रिय और आक्रमणकारी मानने को विवश करती है। स्वयं ऋग्वेद की अनेक ऋचाओं में स्पष्ट संकेत हैं कि आर्य युद्धख़ोर और मदिरासेवी लोग थे।[12] इन आर्यों के लिए भारत की जलवायु सुखद और सहायक सिद्ध हुई और वे यहीं रुक कर अपना विस्तार करने लगे। स्वाभाविक रूप से वे अपने साथ अपने पशु, हथियार और परम्पराओं के साथ अपनी मान्यताएँ और मिथक भी लाए थे।[13] प्राचीन ऋग्वेद के वर्णन असुरों का उल्लेख करते हैं जिनके ख़िलाफ़ सुरों और देवताओं ने लगातार युद्ध किया था। यहाँ यह देखना महत्त्वपूर्ण है कि ब्राह्मण परम्परा, जो कि आर्यों की परम्परा है, अपने आरम्भिक संघर्ष में सर्वप्रथम कोयवंशी गोण्डों के ख़िलाफ़ और बाद में फिर असुरों के ख़िलाफ़ कुछ ख़ास तरह के कुटिल हथकण्डे इस्तेमाल कर रही हैं। ठीक यही हथकण्डे और षड्यंत्र ब्राह्मणवादी धर्म को ऊँचा दिखाने और उसे प्रतिष्ठित करने के लिए बाद में बुद्ध, बौद्ध धर्म और कबीर व रविदास के ख़िलाफ़ भी इस्तेमाल किये गये। चूँकि इतिहास और मिथक को ब्राह्मण परम्परा ने सहेजा और आकार दिया, इसलिए उन्होंने शत्रुओं को उनके उद्विकास (क्रमविकास या

[11] आम्बेडकर (1970).
[12] रॉस (2008).
[13] कीथ (1925) : 1.

08_jothe:Layout 1 7/25/2016 11:38 AM Page 112

एवोल्यूशन) की अवस्था के अनुसार कई श्रेणियों में बाँट दिया जिन्हें असुर और बौद्ध या अछूत कहा जा सकता है। लेकिन स्वयं को अलग-अलग श्रेणियों में न रख कर आर्य ब्राह्मण ही घोषित किया है। लेकिन असल में डॉ. आम्बेडकर के विश्लेषण में यह असुर अछूत और बौद्ध अंत में क्षत्रिय ही साबित होते हैं। और, देबीप्रसाद चट्टोपाध्याय और स्वामी अछूतानंद सहित भदंत बोधानंद महास्थविर के अध्ययन में यह सब मूलनिवासी साबित होते हैं।

हालाँकि डॉ. आम्बेडकर आर्य आक्रमण थियरी में भरोसा नहीं रखते, लेकिन फिर भी स्थानीय स्तर पर भारत में ऊँच-नीच के निर्माण का जो षड्यंत्र चलाया गया है उसके संबंध में उनका विश्लेषण हमारे लिए उपयोगी है। डॉ. आम्बेडकर के अनुसार अगर आर्य अन्य देश से न भी आये हों तो भी उनका अपना विश्लेषण ब्राह्मण-श्रमण या ब्राह्मण-क्षत्रिय संघर्ष को अपनी पूरी नग्नता में उजागर करता है। इसी को अगर प्राचीन भारतीय भौतिकवाद के विश्लेषण के साथ रखा जाए तो यह संघर्ष देव-असुर संग्राम को भी ब्राह्मण-क्षत्रिय संग्राम की तरह निरूपित कर सकता है। भविष्य के लिए यह तर्क और यह तरीक़ा महत्त्वपूर्ण है। इसका ठीक इस्तेमाल करते हुए हम देख पाते हैं कि एक आततायी संस्कृति के प्रतिनिधियों ने मूलनिवासी संस्कृति को एक जैसे तरीक़ों और षड्यंत्रों से कमज़ोर कर परास्त किया है। यह तरीक़ा क्या था? वह धार्मिक-दार्शनिक उपाय क्या था? इसका उत्तर असुरों, बौद्धों, कबीर और रविदास के ख़िलाफ़ रची गयी मिथकीय कथाओं में मिलता है। बुद्ध, कबीर और असुरों के ख़िलाफ़ रची गयी प्रति-संस्कृति और मिथकीय प्रचार को हम न्यूनाधिक जानते ही हैं, लेकिन इनके अलावा अब गोण्डी दर्शन और संस्कृति की तरफ़ से भी अब ठीक यही आख्यान उभर रहा है जिसका उल्लेख शायद इस तरह के विमर्शों में आज तक नहीं हुआ है।

गोण्डी पुनेम दर्शन और ब्राह्मणी धर्म

गोण्ड एक समय में शक्तिशाली राज्य व्यवस्था के संस्थापक रहे हैं। दलपतशाह जैसे महान गोण्डी राजाओं ने विस्तृत भूभाग पर शासन किया है। आज भी उनके नाम पर मध्य प्रदेश के बालाघाट सहित अन्य अनेक ज़िलों में उनके व अन्य गोण्ड राजाओं के क़िलों, मंदिरों और अन्य भवनों के खँडहर मौजूद हैं। पुरातात्विक खोजें अब यह सिद्ध कर रही हैं कि भारत के प्रत्येक राज्य में प्राचीन मंदिरों और क़िलों के खँडहरों में गोण्डी राज चिह्न (हाथी पर बैठा शेर) पाया जाता रहा है। इससे आभास होता है कि गोण्डी संस्कृति सम्भवत: पूरे भारत में फली-फूली होगी और बाद में आर्य या ब्राह्मणी षड्यंत्रों से उसी तरह नष्ट की गयी जिस तरह कि बाद में महिषासुर, रावण, बुद्ध, कबीर और उनके सम्प्रदायों को नष्ट किया गया। डॉ. मोतिरावण कंगाली के अध्ययन से इस मान्यता को न केवल बल मिलता है बल्कि एक अर्थ में उनकी महान खोज इस बात को स्थापित कर देती है कि गोण्डी पुनेम दर्शन और संस्कृति पहला अखिल भारतीय दर्शन और संस्कृति रही है। उनका अध्ययन स्पष्ट करता है कि किस तरह ब्राह्मणी धर्म ने गोण्डी धर्म और संस्कृति को बुद्ध के उदय के बहुत पहले ही आत्मसात् करके मूल गोण्डी समुदायों को षड्यंत्रपूर्वक समाज व राज्य व्यवस्था में निचले पायदानों पर धकेलकर जंगलों में ही सीमित कर दिया था।

यह देखना उपयोगी है कि लोकयातिकों और मूल सांख्य सहित तंत्र के समान ही गोण्डी दर्शन भी ईश्वर को नहीं मानता, बल्कि प्रकृति की शक्तियों को मानता है। गोण्डी सृष्टि-सृजन या सृष्टिकर्ता में विश्वास नहीं करते। उनके लिए यह प्रकृति ही सब कुछ है। जो न कभी पैदा हुई न कभी समाप्त होगी। मध्य प्रदेश के मण्डला और बालाघाट ज़िलों के शिक्षित गोण्ड आज भी गर्व से कहते हैं कि भगवान शब्द उनका दिया हुआ है जिसमें भ से भूमि, ग से गगन, व से वायु अ से अग्नि और न से नीर है। गोण्ड शब्द को भी वे अपनी विशिष्ट शैली में भगवान शब्द का ही अन्य रूप मानते हैं। यह अर्थ असल में इस लोक के समर्थन में है, इसमें कोई अतिभौतिक या पारलौकिक तत्त्व शामिल नहीं

08_jothe:Layout 1 7/25/2016 11:38 AM Page 113

है और यह अर्थ सृष्टिकर्ता या परमात्मा की सत्ता की बजाय प्रकृति की शक्तियों को महत्त्व देता है।

अगर हम यह कहें कि बुद्ध भी गोण्डी लोगों के प्रथम दार्शनिक पारी कुपार लिंगो की ही तरह या उन्हीं के प्रवाह में भौतिकवादी दर्शन पर अपने दर्शन की नींव रख रहे हैं तो यह बात तर्कपूर्ण लगती है। जिस तरह से पारलौकिक और अतिभौतिक को पारी कुपार लिंगो ने अधिक महत्त्व नहीं दिया है उसी तरह बुद्ध भी इहलोकवादी दर्शन का प्रस्ताव कर रहे हैं। इसी कारण गौतम बुद्ध पंचमहाभूतों पर अपने विचार के परिणाम में इस निष्कर्ष तक आते हैं कि आकाश तत्त्व आत्मा, परमात्मा और पुनर्जन्म जैसे पाखण्डों का आधार बन जाता है। इसीलिए वे पंचमहाभूतों की बजाय चार महाभूतों की प्रस्तावना करते हैं। यह सही है कि हमारे पास लिंगो के दर्शन का विस्तारित रूप और उपलब्ध नहीं है लेकिन उनके द्वारा दिये गये मौलिक सूत्रों और मान्यताओं का बुद्ध की मान्यताओं से साम्य नज़र आता है और यह भी प्रतीत होता है कि बुद्ध स्वयं भी कुपार लिंगो के दर्शन के तार्किक प्रवाह में हैं। इसीलिए बुद्ध ने विचारपूर्वक अपने चार महाभूतों में आकाश तत्त्व को शामिल ही नहीं किया है। भगवान शब्द पर एक अन्य दृष्टि से विचार करें तो प्राचीन आदिवासियों और गोण्डों से हट कर बुद्ध या अन्य श्रमण भगवान शब्द का प्रयोग उस व्यक्ति के लिए करते हैं जो ज्ञान को उपलब्ध हो चुका हो, यह भगवत्ता का अर्थ है भगवान (सृष्टिकर्ता या गॉड) का अर्थ नहीं है। यह भगवत्ता इसी लोक की है। इस तरह एक बार फिर मूलनिवासी और श्रमण मान्यताएँ सिद्ध करती हैं कि न केवल दार्शनिक मान्यताओं बल्कि मिथकीय मान्यताओं और अपने विशिष्ट विश्वोत्पत्ति विज्ञान के स्तर पर भी उनमें काफ़ी समानताएँ हैं।

एक अन्य महत्त्वपूर्ण पहलू यह है कि यही विश्वोत्पत्ति विज्ञान, तंत्र और मूल सांख्य में भी पाया जाता है।[14] यह समानता एक कहीं अधिक गम्भीर और दूरगामी दार्शनिक एकता भी सिद्ध करती है। यह न केवल गोण्डो, असुरों और श्रमणों को एक श्रेणी में ले आती है बल्कि इसी के आधार पर सांख्य और तंत्र के विश्वोत्पत्ति विज्ञान की आपसी समानता स्वयं सांख्य व तंत्र को असुरों और श्रमणों के भौतिकवादी दर्शन से जोड़ देती है। पुरुष व प्रकृति के मिलन से विश्व की उत्पत्ति को तंत्र में नर व मादा तत्त्व के मिलन के रूप में दिखाया गया है। पारी कुपार लिंगो के गोण्डी पुनेम दर्शन में भी प्रकृति (एक अर्थ में संसार चक्र) सल्लाँ और गांगरा नाम के दो तत्त्वों के मिलने से बनता है। यहाँ सल्लाँ असल में पूना (धन तत्त्व) है और गांगरा असल में ऊना (ऋण तत्त्व) है। इन्हीं के संयोग से प्रकृति की उत्पत्ति होती है।[15] पुरुष प्रकृति के मिलन का यही संकेत नर्मदा नदी को दिये गये भिन्न नाम से भी ज़ाहिर होता है। मध्य प्रदेश के बालाघाट ज़िले में गोण्डों की लोककथाओं के अनुसार नर्मदा नदी असल में 'नर-मादा' नदी है। वे आज भी इसी तर्क और इसी प्रतीकवाद का इस्तेमाल करते हैं।

गोण्डी पुनेम दर्शन और गोण्डों की अन्य मान्यताओं पर गहन शोध से निर्मित ग्रंथ पारी कुपार लिंगो गोण्डी पूनेम दर्शन को थोड़ा विस्तार में जानना ज़रूरी है। यह दर्शन गोण्डी धर्म के प्रथम दार्शनिक और आदिगुरु पारी कुपार लिंगो द्वारा रचा गया है और जिसे डॉ. कंगाली ने पहली बार व्यवस्थित दर्शन के रूप में संकलित किया है। यह आर्य-असुर या आर्य-मूलनिवासी संघर्ष का एक अन्य और सबसे प्राचीन आख्यान प्रस्तुत करता है। यह आख्यान असुर-आर्य संघर्ष से भी पुराना है। सम्भवत: यह पहले से ज्ञात अन्य नेरेटिव्ज़ से अधिक विस्तृत है और अन्यों की अपेक्षा अधिक विश्वसनीय प्रमाणों पर आधारित है। यह कोयवंशी गोण्ड जनजातीय समाज में फैले मिथकों और लोककथाओं सहित उनकी धार्मिक मान्यताओं में आज भी अंकित है। उनकी वाचिक परम्परा में इसे

---

[14] चट्टोपाध्याय (1992).

[15] कंगाली (2011).

08_jothe:Layout 1 7/25/2016 11:38 AM Page 114

आज भी देखा जा सकता है।

असुर, गोण्ड और मूलनिवासी धर्म

जैसा कि हमने देखा कि लोकायत धर्म मानने वाले असुर असल में इस देश के प्राचीन मूल निवासी थे। उनकी संस्कृति को छलपूर्वक आर्यों ने नष्ट किया और कालांतर में हीन स्थान देकर समाज के निचली पायदानों पर धकेल दिया गया। यह बात डॉ. आम्बेडकर की सबसे प्रमुख स्थापनाओं में से एक है। इसी तरह गोण्डी संस्कृति और धर्म के विशेषज्ञ डॉ. मोतीरावण कंगाली (1949–2015) ने भी अपने शोध से यह स्थापित किया है कि मूलनिवासी संस्कृति की अधिकतर ऊँची उपलब्धियाँ आर्यों या ब्राह्मण धर्म द्वारा स्वयं में समाहित कर ली गयी हैं और अब उन्हें पहचानना भी कठिन हो गया है। उनका निष्कर्ष है कि आज के गोण्ड सहित अन्य अनेक जनजातीय समाज, जो घोटुल नाम की संस्था से आपस में जुड़े रहे हैं, वे सब के सब किसी अन्य लुप्त हो चुकी महान् संस्कृति के वारिस हैं जिनकी संस्कृति को छलपूर्वक नष्ट किया गया है और चुराया गया है। चुराए गये इन प्रतीकों और चरित्रों की सूची लम्बी है। उदाहरण के लिए मध्य प्रदेश में हिंदुओं की बम्लेश्वरी देवी के बारे में उनका दावा है कि असल में यह गोण्डों की बम्लाई दाई हैं जिसे कि आर्य ब्राह्मण पण्डितों ने बम्लेश्वरी देवी बना दिया है, इसी तरह गोण्डी समुदाय के आदिपुरुष संभूसेक बाद में हिंदुओं के महादेव बन जाते हैं। इसी तरह गोण्डी जनों का पवित्र भूभाग पेंकमेढ़ी बाद में पचमढ़ी बना दिया जाता है। और इसी तरह बीसियों नाम और प्रतीक व व्यवहार हैं जो थोड़े बदलाव के साथ सीधे सीधे ब्राह्मणी धर्म के अनुयायियों ने चुरा लिए हैं।[16]

डॉ. कंगाली के बारे में एक अन्य महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि वे प्राचीन हड़प्पन सभ्यता की सैंधव लिपि को गोण्डी व्याकरण के आधार पर सफलता से पढ़ सकने वाले विश्व के पहले विद्वान हैं। भाषाशास्त्रीय आधारों पर वे स्थापित करते हैं कि सैंधव सभ्यता के सामाजिक धार्मिक और सांस्कृतिक मूल्य आज के गोण्डों के मूल्यों से गहराई से एकरूप रहे हैं।[17] भाषा की समानता के आधार पर भी उनकी शोध से यह मान्यता स्थापित होती है कि गोण्डों की आज की भाषा असल में द्रविड़ पूर्व भाषा थी, इसीलिए गोण्डी भाषा को द्रविड़ परिवार की सभी भाषाओं की जननी माना जा सकता है। उनके इस दावे में सच्चाई मालूम होती है। क्योंकि आज भी अधिकतर द्रविड़ भाषाओं और गोण्डी भाषा के बीच समानता पाई जाती है।

उपनिषदों के अध्ययन के आधार पर यह निष्कर्ष भी निकलता है कि प्राचीन जनजातीय समाज या असुर समाज और उनका असुर मत असल में बुद्ध से भी प्राचीन रहा है। प्रोफ़ेसर दासगुप्त (1925)[18] का अध्ययन बताता है कि असुर लोगों में शव को दफ़नाने की प्रथा रही है, जिसके उल्लेख छांदोग्य उपनिषद में भी मिलते हैं। आज भी यह प्रथा कई आदिवासी समुदायों में है। गोण्ड जनजाति में इसे आज भी माना जाता है। इस प्रकार असुर मत या लोकायत के अर्थ का भौतिकवाद हालाँकि एक विकसित भौतिकवाद नहीं था, लेकिन यह जिस भी रूप में रहा था वह बुद्ध से पूर्व का प्रतीत होता है।[19] इस बिंदु पर आकर यह समझा जा सकता है कि अक्सर ही गोण्डों के प्राचीन मंदिरों और क़िलों में गोण्डी राजचिह्नों के साथ साथ श्रमण व तांत्रिक परम्परा की मूर्तियाँ क्यों पाई जाती हैं। यहाँ उल्लेख करना ज़रूरी है कि मध्य प्रदेश के बालाघाट में लांजी नामक स्थान पर नेताम वंश के गोण्ड शासकों

---

[16] कंगाली (2002).

[17] वही.

[18] दासगुप्त (1922) : 55.

[19] चट्टोपाध्याय (1992).

08_jothe:Layout 1 7/25/2016 11:38 AM Page 115

डॉ. कंगाली हड़प्पा सभ्यता की सैंधव लिपि को गोण्डी व्याकरण के आधार पर सफलता से पढ़ सकने वाले पहले विद्वान हैं। वे स्थापित करते हैं कि सैंधव सभ्यता के सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक मूल्य आज के गोण्डों के मूल्यों से गहराई से एकरूप रहे हैं। ... गोण्डों की आज की भाषा असल में द्रविड़ पूर्व भाषा थी, इसीलिए गोण्डी भाषा को द्रविड़ परिवार की सभी भाषाओं की जननी माना जा सकता है। ... आज भी अधिकतर द्रविड़ भाषाओं और गोण्डी भाषा के बीच समानता पाई जाती है।

के प्राचीन दुर्ग की खुदाई में जो मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं उनमें बुद्ध, महावीर, गणपति, और सम्भोगरत युगल की मूर्ति भी पाई गयी है।

यहाँ हम अन्य मूर्तियों और पुरातात्विक महत्त्व की वस्तुओं के बीच साम्य को कुछ अन्य विस्तार में देखने का प्रयास करेंगे। यह प्रमाण नये नहीं हैं लेकिन इस प्रकार के विमर्शों में सम्भवत: पहली बार एक दार्शनिक व ऐतिहासिक संगति में रख कर देखे जा रहे हैं। लेखक ने अपने बालाघाट भ्रमण से जो तस्वीरें इकट्ठी की हैं, वे कोणार्क की अन्य मूर्तियों से काफ़ी हद तक समानता रखती हैं।

इस प्रकार असुर और श्रमण परम्परा में एक समानता उभरती है और स्पष्ट होता है कि लोकायतिक या प्राचीन असुर मत बुद्ध से भी पूर्व का मत है जिसे आगे चलकर श्रमण परम्परा विशेषकर बौद्ध दार्शनिक शिखर पर पहुँचाते हैं।

प्राचीन भारतीय धार्मिक साहित्य में बृहस्पति सुरों या देवों के गुरु माने गये हैं। इनके बारे में उल्लेख है कि उन्होंने असुरों के बीच लोकायत दर्शन का प्रचार करके उन्हें भ्रष्ट किया और अधर्म और अनैतिकता का पालन करने से असुर नष्ट हुए। यही उल्लेख बाद में बुद्ध के बारे में है। बुद्ध को भी इसी तरह से वेद विरोधी और नास्तिकवादी भौतिकवादी दर्शन का प्रचार करके लोगों को गुमराह करने वाले विष्णु–अवतार के रूप में चित्रित किया गया है।[20] ठीक इसी तरह की किंवदंतियाँ कबीर के बारे में भी हैं जिनका उल्लेख डॉक्टर धर्मवीर[21] ने भी अपनी महत्त्वपूर्ण रचना *कबीर : खसम खुशी क्यों होई* में किया है। इस किंवदंती के बारे में वे बताते हैं कि यह बनारस के आसपास के इलाक़ों में सुनी जाती है। इसके अनुसार कबीर एक बार अपना भौतिक शरीर छोड़कर सूक्ष्म शरीर से तीर्थ दर्शन करने गये। इस बीच कोई भूत आकर उनके शरीर में घुस गया और उनके द्वारा वेद विरुद्ध और ब्राह्मण धर्म के विरुद्ध साहित्य रचवा कर चला गया। बाद में जब कबीर लौटे तो वह भूत उन्हें देख कर भाग गया। इसलिए ब्राह्मणवादी तर्क कहता है कि कबीर की शिक्षाओं को गम्भीरता से नहीं लेना चाहिए।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राचीन असुर, फिर बाद के श्रमण, जिनमें बुद्ध प्रमुख हैं, और इनके बाद के कबीर जैसे संतों के ख़िलाफ़ एक जैसी युक्तियाँ अपनाई गयी हैं। आगे गोण्डी पुनेम दर्शन पर विस्तार से चर्चा करते हुए हम देखेंगे कि इसी तरह संभूसेक (गोण्डों के आदि पुरुष का नाम) के

[20] ओमवेट (2003).
[21] धर्मवीर (2013) : 146.

08_jothe:Layout 1 7/25/2016 11:38 AM Page 116

ख़िलाफ़ भी इसी तरह के षड्यंत्र रचे गये हैं। इन सबके मौलिक महात्म्य को तर्क या दर्शन द्वारा नहीं बल्कि कूटनीतिक षड्यंत्र करके और छल द्वारा नष्ट किया गया है। इसीलिए यह मानना चाहिए कि प्राचीन असुर, आज के गोण्ड, बौद्ध, रविदासी और कबीरपंथी एक ही श्रेणी में हैं और उनके सनातन शत्रु देव या सुर या आर्य या ब्राह्मण एक ही हैं।

गोण्डी पुनेम दर्शन में महादेव, पार्वती और महिषासुर के संकेत

आज प्रचलित ब्राह्मणी धर्म में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण समझे जाने वाले महादेव या शिव, जिनका एक नाम शंभू भी है, और उनकी संगिनी पार्वती सहित गौरी और सती से मिलते जुलते उल्लेख गोण्डी संस्कृति की प्राचीन कथाओं में पाए जाते हैं। कोई यह तर्क दे सकता है कि यह प्रतीक और चरित्र गोण्डों ने हिंदू या ब्राह्मणी धर्म से लिए होंगे। लेकिन इस आरोप का परीक्षण करें तो यह अपनी मौत खुद ही मर जाता है। ज्ञात इतिहास में कोयवंशी गोण्ड या आदिवासी समुदाय एक वनवासी समुदाय रहा है। उनका स्थान आर्यों की वर्ण व्यवस्था में कहीं भी नहीं है। वे वर्णाश्रम धर्म की किसी भी व्यवस्था में किसी भी सामाजिक राजनीतिक स्थिति या भूमिका में नहीं रहे हैं। उन्हें किसी भी तरह न तो ब्राह्मणी धर्म की पवित्र भाषा संस्कृत सिखाई जा सकती थी, न ही वे ब्राह्मणी मंदिरों में प्रवेश करके दीक्षित हो सकते थे। बल्कि इसके विपरीत उनसे आर्यों के युद्ध और संघर्ष के अनेक उल्लेख मिलते हैं। इसीलिए उनके सम्बन्ध में यदि यह माना जाए कि वे आर्यों के साथ सामाजिक या धार्मिक प्रक्रियाओं के माध्यम से शिक्षित हुए और फिर उन्होंने ब्राह्मणी प्रतीकों के आधार पर दक्षिण में सुदूर मदुरै, कोणार्क से लेकर मध्य के अजंता-एलोरा, गढ़-चिरोली, अमरकंटक सहित सुदूर पश्चिम के कांधार और हड़प्पा मोहनजोदाड़ो तक अपने प्रतीक व भाषा सहित मिथक भी रच लिए तो यह कल्पना, सुझाव या आरोप हास्यास्पद ही सिद्ध होगा।

इस विमर्श को आगे बढ़ाते हुए यह तर्क दिया जा सकता है कि गोण्डों की संस्कृति के ख़िलाफ़ आर्य प्रति-संस्कृति का यह उभार असल में आर्यों का पहला सफल प्रयोग था। यह लेख दावा करना चाहता है कि असुरों से भी पहले आर्यों का सामना कोयवंशी गोण्डों और संभुसेक द्वारा निर्मित संस्कृति से हुआ था। कालांतर में आर्यों ने इस संस्कृति को चयनात्मक ढंग से आत्मसात् करके उसी के आधार पर अपने विश्वास और कर्मकाण्ड रचे। यह घटना समय के सुदीर्घ विस्तार में हुई होगी। इसके बाद यहाँ स्थापित हो जाने के बाद उन्होंने देव और असुर जैसी दो स्पष्ट श्रेणियों का निर्माण करके उसके आधार पर मिथक और मिथकीय इतिहास रचा। इस तरह के दावे करने का एक बड़ा कारण है यह है कि गोण्डों की वाचिक परम्परा में संभुसेक का उल्लेख है जो बाद में हिंदुओं के महादेव बन जाते हैं। इसी तरह वैदिक और पौराणिक साहित्य में भी प्रमाण हैं कि शिव या महादेव कोई अचानक से प्रगट हो गये देवता नहीं हैं। कहीं कहीं तो गणेश और शिव एक ही समान प्रतीत होते हैं। इस प्रकार हिंदू परम्परा में महादेव और गणेश दोनों की उत्पत्ति और अस्तित्व जटिल है। आर्य-गोण्ड संग्राम को देवासुर संग्राम से प्राचीन मानने का दूसरा कारण है कि आर्यों का देव-असुर संग्राम असल में ब्राह्मण आर्यों द्वारा गोण्डी संस्कृति और गोण्डी देवताओं को विशेषकर संभुसेक को आत्मसात् कर महादेव बना देने के बाद में आकार ले रहा है। इसीलिए देव असुर संग्राम के ब्राह्मणवादी संस्करण में अक्सर ही महादेव या शंभू का ज़िक्र आता है जो देवताओं को बचाने के लिए स्वयं युद्ध में उतरते हैं या ब्रह्मा या विष्णु या अन्य किसी देवी देवता के ज़रिये आर्यों या देवों की मदद करते हैं।

डॉ. कंगाली ने गोण्डी वाचिक परम्परा से जो विवरण दिये हैं उनका तर्कपूर्ण ढंग से विश्लेषण करने पर एक अन्य पहेली सुलझती है। वह है हिंदुओं के महादेव का वीभत्स रूप। इसे समझना कठिन है कि कोई समाज अपने देवता को वीभत्स और घृणित क्यों मानेगा और क्यों उसे भयानक चित्रित करेगा? ग़ौर से देखें तो यह महादेव या शंभू अपने बाह्य आचरण व धार्मिक दार्शनिक मान्यताओं

08_jothe:Layout 1 7/25/2016 11:38 AM Page 117

में भी आर्यों और इंद्र सहित बाद में उभरने वाले विष्णु जैसे उनके अन्य देवताओं के समान नहीं हैं। लेकिन फिर भी उन्हें शक्तिशाली और घृणित, दोनों ही एकसाथ माना गया है। बाद में ऐसी ही मान्यता महिषासुर के साथ भी उभरती है जिसमें वे महाप्रतापी लेकिन घृणित राक्षस की तरह चित्रित किये गये हैं। आर्यों के सबसे महत्त्वपूर्ण देव इंद्र या विष्णु जो सुसज्जित सुसंस्कृत सफ़ाई से और शृंगार आदि में रहने वाले देव हैं, जबकि महादेव जटाजूटधारी हैं, श्मशान वासी हैं और भूत-प्रेतों सहित अन्य घृणित जीवों के देवता है। कालांतर में न केवल वे देव बन जाते हैं, बल्कि इंद्र से भी अधिक पराक्रमी बन कर ब्राह्मणी त्रिमूर्ति के अविभाज्य अंग बन जाते हैं। यह बिलकुल वही पहेली है जो बाद में गणपति और महिषासुर के साथ बनी हुई है।

महादेव और महिषासुर की मान्यताओं और स्वीकार्यताओं के भेद से एक अन्य बात सिद्ध होती है जो स्वयं में एक अन्य सच्चाई की तरफ़ संकेत करती है। संभूसेक को महादेव बना डालने के बावजूद उनका व्यक्तित्व और प्रभाव इतना विराट है कि वे लोकमानस से बाहर नहीं निकल सके। इसीलिए उन्हें उनकी महिमा के साथ चुराने और उनके संबंध में नशाखोर, उन्मुक्त कामी और भयानक होने के आरोपणों के बावजूद वे लोकमानस में पूज्य बने रहे। सम्भवत: इसीलिए वे ब्राह्मणी धर्म द्वारा कल्पित की गयी त्रिमूर्ति के भी अनिवार्य अंग भी बन गये। इसी तरह गणेश या गणपति भी चुराए गये हैं। उनके संबंध में अत्यंत प्राचीन विवरणों और क्रमश: कम प्राचीन विवरणों में विरोधी स्वर पाए जाते हैं। संभूसेक और गणेश दोनों चुरा लिए जाने के बावजूद लोकमानस में पूजनीय देवताओं की तरह अंकित रहे लेकिन महिषासुर काफ़ी हद तक भुला ही दिये गये। यह एक अन्य पहेली है जिसका उत्तर थोड़े तर्कपूर्ण विश्लेषण से खोजा जा सकता है।

यहाँ देखना ज़रूरी है कि संभूसेक और गणपति कोई एक व्यक्ति नहीं हैं। गोण्डी पुनेम दर्शन में अट्ठासी संभुसेकों का उल्लेख है। इसी तरह ऋग्वेदिक व पौराणिक उल्लेखों में कई गणेश या गणपति पाए जाते हैं। यह दोनों चरित्र असल में व्यक्ति नहीं बल्कि पदवियाँ हैं। इसलिए समय की धारा में इनका और इनकी महिमा का एक सातत्य रहा है जो लोकमानस में ऐतिहासिक रूप से स्थापित हो गया और इसी कारण ब्राह्मणी परम्परा अपनी सारी चालबाज़ियों के साथ भी उन्हें उखाड़ नहीं सकी। इसके विपरीत महिषासुर चूँकि एक व्यक्ति या एक चरित्र हैं, वे इतिहास या संस्कृति के विस्तार में फैले हुए पद का नाम नहीं हैं, इसीलिए संभवत: वे सारे पराक्रम और सफलताओं के बावजूद भुला दिये गये। इसी से एक अन्य गहरा संकेत मिलता है वह यह कि संभूसेक और गणपति का क्रमश: महादेव और विघ्नहर्ता के रूप में बचे रहना असल में व्यक्तियों का नहीं बल्कि संस्थाओं का बचे रहना है। महिषासुर चूँकि व्यक्ति हैं इसलिए वे लगभग पूरी तरह मिटा दिये गये। लेकिन इसी क्रम में अगर हम असुर परम्परा या समाज को देखें तो वह बची रही। आज भी कम संख्या में ही सही लेकिन असुर परिवार मौजूद हैं।

एक अन्य कारण भी हो सकता है जो समझाता है कि क्यों महिषासुर महादेव की भाँति नायक की तरह आत्मसात् नहीं किये गये बल्कि एक राक्षस और खलनायक की तरह दिखाए गये हैं। इसका कारण यह भी है कि संभुसेक को मोहित करने के लिए जिन पार्वती को भेजा गया था वे स्वयं ही सम्मोहित होकर उनकी पत्नी व शिष्या बन गयी थीं। इस तरह आर्यों की चाल उल्टी पड़ गयी और बाद में जिस तरह से आर्यों द्वारा पार्वती की छलपूर्वक हत्या की गयी उसके कारण संभुसेक और पार्वती दोनों ही तात्कालिक लोकमानस में सहानुभूति और श्रद्धा के पात्र बन गये होंगे। लेकिन महिषासुर के ख़िलाफ़ जिन दुर्गा देवी को भेजा गया था, वे अपने कार्य में सफल हुईं और उन्होंने महिषासुर की सफलता से हत्या कर दी। अगर हम संभुसेक और महिषासुर को अलग अलग मानें तो दोनों के साथ घट रही इन घटनाओं में समानता भी है और एक अंतर भी है। यही अंतर इनकी ऐतिहासिक मान्यताओं को आकार दे रहा है।

लेकिन एक अन्य कारण भी हो सकता है जिसे नकारना कठिन होगा। संभुसेक और पार्वती का

08_jothe:Layout 1 7/25/2016 11:38 AM Page 118

मिथक महिषासुर की तुलना में प्राचीन लगता है। अत: गोण्डों के संभुसेक और पार्वती आर्यों के शंभू-पार्वती बना लिए गये होंगे, और इस प्रकार कोयवंशी गोण्डों को परास्त करने के बाद उनका सामना आगे चलकर असुरों से हुआ होगा। बाद में असुरों के ख़िलाफ़ भी इसी तरह की रणनीति अपनाई गयी होगी जो सफल रही। यहाँ अगर हम दो जनजातियों के अलग अलग आख्यानों की भिन्नता पर ग़ौर करें तो यह भिन्नता भी अपने आप में बहुत कुछ व्यक्त करती है। अर्थात् कोयवंशी गोण्डों का आख्यान अलग ढंग से इस घटना को रिकॉर्ड कर रहा है और असुरों का आख्यान अलग ढंग से। इस तरह इन दो जनजातियों की आपसी भिन्नता और शक्ति संरचना के सापेक्ष इनके मिथकों ने आकार लिया होगा और पीढ़ी दर पीढ़ी स्वयं को बचाया होगा। मिथक के इस संरक्षण और संचरण के तरीक़ों की भिन्नता भी महिषासुर और शिव की मिथकीय पहचान में भिन्नता का एक कारण हो सकती है।

जो भी हो, इन दोनों को अलग मानने पर भी इनकी महिमा के अंतर को समझा जा सकता है और इन दोनों को एक ही माना जाए तो भी इन्हीं तर्कों से उनकी महिमा के अंतर को समझाया जा सकता है। हो सकता है जो आख्यान असुरों से आ रहा है, वह बाद में कमज़ोर और असंगठित हो चुके खेतिहर या वनवासी समाज का आख्यान हो जो गोण्डों के शक्ति संस्थान के बिखर जाने के बाद उपजा हो। यह सम्भावना हो सकती है। अगर इस सम्भावना पर विश्वास करें तो यह समझाती है कि चूँकि गोण्ड उन्नत दार्शनिक समझ वाले समुदाय थे उन्होंने दार्शनिक व धार्मिक बिंदुओं के आधार पर अपने नायक की जय-पराजय और उसके जीवन को सँजो कर रखा। इसके विपरीत असुर सम्भवत: गोण्डी पराजय के बाद उपजा कोई समुदाय है जो सिर्फ़ युद्ध की जय पराजय के अर्थ में अपने नायक को याद रख सका है। इस तर्क के साथ भी महिषासुर और संभुसेक या महादेव को एक ही माना जा सकता है, और दो अलग अलग व्यक्ति भी माना जा सकता है। अगर यह एक थे तो भी अलग अलग जनजातियों की अपनी विशिष्ट प्रवृत्तियों ने इन्हें भिन्न रूप से याद किया है। अगर यह अलग थे तब तो अलग अलग कहानियाँ स्वयं भी इन्हें अलग कर ही रही हैं। लेकिन इस अलगाव की दशा में भी इनके साथ जुड़ी घटना की प्रकृति बिलकुल एक ही ठहरती है। वह है शूरवीर मूलनिवासियों के ख़िलाफ़ आर्यों द्वारा स्त्रियों का इस्तेमाल करना।

इसी दिशा में आगे बढ़ें और महिषासुर को व्यक्ति या संस्था मानने के प्रश्न पर विचार करें तो हमारी यह मान्यता भी खण्डित हो सकती है कि महिषासुर एक व्यक्ति हैं। प्रमोद रंजन का ज़मीनी अध्ययन[22] बताता है कि महिषासुर अपने मूलनाम (असल में ब्राह्मणों द्वारा दिये गये नाम) से नहीं बल्कि अन्य नामों जैसे मैकासुर, भैंसासुर, म्हसोबा, मनुज देवा, जैसे अनेक स्थानीय नामों से जाने जाते हैं। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि महिषासुर का मूल नाम कुछ भी रहा हो लेकिन आर्यों ने उन्हें यह नाम देकर उनकी प्रतिनिधि परम्परा को नष्ट करने के बाद उनकी पहचान मिटा दी और उनके अपने सम्प्रदाय के लोकमानस से उनके प्रमाण समय की प्रक्रिया में नष्ट हो गये। इस तरह देखें तो महिषासुर भी एक संस्था की तरह उभरते हैं जो महिषासुर नाम से नहीं बल्कि अन्य अनेक नामों से पूरे भारत में विद्यमान हैं।

इस बिंदु पर आकर एक उलझन खड़ी होती है। अब जो समस्या गणपति या शिव के साथ है वही समस्या महिषासुर के साथ नज़र आने लगती है। इन तीनों में एक गहरी समानता है और एक छोटा सा अंतर भी है। समानता यह है कि इन तीनों को आरंभिक आर्य धर्म साहित्य में महाशक्तिशाली वीभत्स और हेय बताया गया है बाद में इन्हें पूजा बना दिया गया है। इसी तरह संभुसेक जो स्वयं डॉ. कंगाली के अध्ययन में हड़प्पा की सील में अंकित भैंस के सींगों का मुकुट या महिषासुर मुकुट पहनने

---

[22] प्रमोद रंजन (2014) : 3-7.

08_jothe:Layout 1 7/25/2016 11:38 AM Page 119

चूँकि गोण्ड उन्नत दार्शनिक समझ वाले समुदाय थे, उन्होंने दार्शनिक व धार्मिक बिंदुओं के आधार पर अपने नायक की जय-पराजय और उसके जीवन को सँजो कर रखा। इसके विपरीत असुर सम्भवतः गोण्डी पराजय के बाद उपजा कोई समुदाय है जो सिर्फ़ युद्ध की जय पराजय के अर्थ में अपने नायक को याद रख सका है। इस तर्क के साथ भी महिषासुर और संभुसेक या महादेव को एक ही माना जा सकता है, और दो अलग-अलग व्यक्ति भी माना जा सकता है।

वाले आदि नायक हैं वे बहुत कुछ महिषासुर जैसे प्रतीत होते हैं। डॉ. कंगाली स्वयं ही सिद्ध करते हैं कि संभुसेक ही महादेव या शिव हैं। इस समानता को आगे बढ़ाते हुए यह लेख दावा करना चाहता है कि अंतिम संभुसेक और महादेव और महिषासुर भी एक ही हैं। इसीलिए न केवल इन तीनों का चित्रण आर्य साहित्य में एक जैसा है बल्कि इनकी महिमा को नष्ट करने का और इनकी हत्या करने का षड्यंत्र भी एक जैसा रचा गया है। इस तरह दोहरी समानताएँ हैं जो इस दावे का समर्थन करती हैं कि यह तीनों चरित्र एक ही हैं। यह समानता यह भी बताती है कि वर्तमान ब्राह्मणी या हिंदू धर्म जिस शंकर या शिव को पूज रहा है वह असल में संभुसेक का ही विकृत रूप है।

इसी तरह *लोकायत* नामक ग्रंथ में जो विवेचन देबीप्रसाद चट्टोपाध्याय करते हैं वह दिखाता है कि गणपति पहले विघ्नकर्ता थे बाद में उन्हें आर्यों ने अपने देवताओं में शामिल कर लिया और विघ्नहर्ता बना दिया। ऋग्वेदिक सूत्रों में ऐसी प्रार्थनाएँ पाई जाती हैं जिनमें कहा गया है कि हमें गणपतियों से बचाओ।[23] बाद में गणपति को प्रथम वंदनीय बनाकर शंभू या शिव या असल में महादेव और पार्वती के परिवार में दिखाया जाता है। इसका अर्थ यह हुआ कि डॉ. कंगाली जिस संभूसेक के महादेव बन जाने का उल्लेख कर रहे हैं वह असल में आर्यों द्वारा गणपति को षड्यंत्रपूर्वक आत्मसात् कर लेने के बहुत पहले की घटना है। गणपति को शिव या महादेव के परिवार में शामिल करने का अर्थ ही यह है कि शिव या महादेव पहले ही ब्राह्मणी धर्म में शामिल हो चुके हैं। बाद में गणपति को जिस तरह से शामिल किया जा रहा है वह देखना भी महत्त्वपूर्ण है। वे सम्मानजनक ढंग से शिव या पार्वती के परिवार में शामिल नहीं हो रहे हैं। उन्हें भी घृणित तरीक़े से शामिल किया जा रहा है। गणेश के जन्म के बारे में जो पौराणिक उल्लेख है उनमें वे प्राकृतिक रूप से पैदा नहीं हो रहे हैं बल्कि वे भी एक घृणित और निंदित तरीक़े से अस्तित्व में आ रहे हैं। इसे समझाने के लिए स्कंदपुराण में जो उल्लेख है वह गणपति या गणेश को पार्वती के मैल से निर्मित बताता है। कुछ अन्य पुराण उन्हें पार्वती की विष्ठा या मल से निर्मित बताते हैं। यह फिर से वही बात है जो महादेव यानी संभुसेक को निंदित व घृणित बनाने के लिए की गयी थी। संभुसेक के महादेव बन जाने की बात आगे हम विस्तार से करेंगे। यहाँ अभी यह महत्त्वपूर्ण है कि गणपति और गणेश भाषा के व्याकरण के अनुसार एक ही

[23] चट्टोपाध्याय (1992).

08_jothe:Layout 1 7/25/2016 11:38 AM Page 120

ठहरते हैं। पति और ईश दोनों का अर्थ मालिक या स्वामी ठहरता है। इस तरह कुछ मूल शब्दों और उनसे जुड़े चरित्रों सहित मिथकीय विस्तार में देखने से यह भी स्पष्ट होता है कि गण, शंभू, पार्वती, महादेव, त्रिशूल, त्रिमूर्ति, नर्मदा, पंचमढ़ी इत्यादि अनेक शब्द और उनसे जुड़ी दार्शनिक या धार्मिक मान्यताएँ असल में गोण्डी धर्म भाषा और संस्कृति से सीधे सीधे चुराए गये हैं।

अब हम यह जानेंगे कि संभुसेक किस तरह और किन समानताओं के आधार पर ब्राह्मणों के महादेव बना लिए गये और इस ऐतिहासिक अपहरण या आत्मसातीकरण को कैसे पकड़ा जा सकता है। इसका सूत्र हमें डॉ. कंगाली से मिलता है जब वे अपने गोण्डी पुनेम दर्शन में गोण्डों की मिथकीय मान्यताओं के बारे में लिखते हैं। यह मिथक आज भी गोण्डी लोकगीतों में अंकित है। उनके अनुसार संभूसेक गोण्डी पुनेम दर्शन में सबसे अधिक महिमाशाली शब्द है। असल में यह एक पदवी है। यह एक मिथकीय पदवी है जिसका अर्थ है पञ्चखण्ड धरती का राजा।[24] यही संभूसेक शब्द संभू मा-दाव के रूप में भी जाना जाता है। संभू मा-दाव का अर्थ है संभू हमारा पिता। डॉ. कंगाली के अनुसार यही संभू मा-दाव बाद में ब्राह्मणों का शंभू महादेव बन जाता है। ऐसे अट्ठासी संभूसेक हुए हैं जिनके अलग अलग नाम हैं। यह सभी अपनी पत्नियों के साथ बताए गये हैं। इनके कुछ नाम इस प्रकार हैं: संभू-मूला, संभू-गोंदा, संभू-मूरा, संभू-सैया, संभु-गवरा इत्यादि। यहाँ अंतिम तीन नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। जो इस प्रकार हैं संभू-सती, संभू-गीरजा और संभू-पार्बती। ये शब्द ब्राह्मणी धर्म के शंभू-सती और शंभू-पार्वती से मिलते जुलते हैं। इसी तरह एक अन्य शब्द है कलि कंगाली। यह कलि कंगाली एक अर्थ में गोण्डी जनों की आदि माता (दाई) मानी गयी हैं। उनकी मान्यता है कि कोय वंशीय गोण्ड सगा समुदाय (गोण्ड जन या मूल गोण्डी में गण्डजन) असल में कली कंगाली नामक माता या दाई की कोय (कोख) से उत्पन्न हुए हैं इसीलिए वे कोयवंशी गोण्ड कहलाते हैं। महान गोण्डी दार्शनिक पारी कुपार लिंगो असल में संभू-गवरा के कार्यकाल में पैदा हुए थे और उन्होंने जिस गढ़ से अपना पुनेम दर्शन का प्रचार आरम्भ किया था वह लिंगो गढ़ आज भी अमरकूट या अमरकंटक के पास देखा जा सकता है। इन्हीं पारी कुपार लिंगो ने संभू-गवरा के 'गोएंदडी' या डमरू की आवाज़ से 'गोयेदाडी वाणी' की रचना की और उसी से गोण्डी पुनेम दर्शन का प्रचार किया और 'मुंदमुन्शूल सर्री' अर्थात् 'त्रैगुण्य मार्ग या त्रिशूल मार्ग' की स्थापना की।[25] भाषा की समानता के आधार पर इन्हीं संभू-गवरा को शंभू गौरा का आदि रूप माना जा सकता है, और शिव या महादेव के डमरू को संभु-गवरा का 'गोएन्दडी' माना जा सकता है।

संभूसेक शृंखला में संभू-पार्बती अंतिम जोड़ी थी और इन्हीं के दौर में एशिया माइनर के विदेशी आर्यों ने हमला करना शुरू किया था। अब आगे जो विवरण डॉ. कंगाली देते हैं वह अंतिम संभूसेक को महिषासुर, बुद्ध और कबीर की श्रेणी में ला कर खड़ा कर देता है। उनके अनुसार अंतिम संभूसेक ने आर्य आक्रमणों का करारा उत्तर दिया और आर्य उन्हें सीधी टक्कर में सैनिक उपायों से परास्त करने में बार-बार विफल हुए। अंत में उन्होंने कूटनीति का इस्तेमाल किया।

> संभूसेक को कूटनीति से अपने वश में करने हेतु आर्यों ने दक्ष कन्या पार्वती को इस्तेमाल किया। उसे अनेक प्रकार के नशीले द्रव्यों का आदी बनाया गया। भोले संभू आर्यों की कूटनीति को समझ नहीं पाए। संभूसेक पार्वती के मोहजाल में फँसकर सुप्त अवस्था में पहुँच गये।[26]

आगे चलकर इसी कारण संभू और कुपार लिंगो की व्यवस्था नष्ट हो गयी और आर्य विजयी

---

[24] कंगाली (2011).

[25] वही.

[26] वही : 14.

08_jothe:Layout 1 7/25/2016 11:38 AM Page 121

हुए। फिर ब्राह्मणी प्रचार तंत्र ने अपना अगला दाँव चलते हुए जिस तरह के पौराणिक व धार्मिक आख्यान रचे उनमे संभुसेक को नशेड़ी, कामुक, घृणित, भयावह और श्मशानवासी तक बताया गया है। यह उन्हें जनमानस में राक्षस या खलनायक सिद्ध करने का प्रयास माना जा सकता है। अंतिम संभूसेक को परास्त करने के लिए जिस कन्या पार्वती को भेजा गया उसका नाम संभू-पार्वती के मूल गोण्डी नाम से मिलता-जुलता है। इस समानता को देखकर कोई यह कह सकता है कि संभू-पार्वती शब्द युग्म का पार्वती शब्द असल में दक्ष कन्या का नाम है। डॉ. कंगाली अन्य स्थान पर यह स्पष्ट करते हैं कि यह पार्वती जो कि संभुसेक को मोहित करके परास्त करने के लिए भेजी गयी थीं वे स्वयं संभुसेक से मोहित होकर उनकी शिष्य और पत्नी बन जाती हैं। इसीलिए हिंदुओं के चित्रण में भी शिव जटाजूटधारी और काले हैं और पार्वती गौर वर्ण एवं सुंदर देवी हैं। इसी लेख में आगे इस विषय को कुछ और विस्तार में दिखाया गया है।

बंगाल, झारखण्ड और अन्य स्थानों पर असुर जनजातीय समाजों की वाचिक परम्परा के अनुसार ठीक यही षड्यंत्र महिषासुर के साथ खेला गया है। अंतर इतना है कि महिषासुर के साथ पार्वती की भूमिका में दुर्गा को रखा गया है। इस प्रकार इतिहास के अलग अलग मोड़ों पर संभूसेक और महिषासुर के ख़िलाफ़ एक ही षड्यंत्र रचा जा रहा है और उनके ख़िलाफ़ जिन कन्याओं को भेजा गया है उन्हें भी मिथकीय भाषा में किसी एक ही सत्ता के अलग-अलग समयों में पैदा हुए अवतार की तरह चित्रित किया गया है। इस बिंदु पर आकर एक अन्य संकेत प्राप्त होता है। सम्भवत: प्राचीन संभूसेक (महादेव) और महिषासुर भी एक ही हो सकते हैं। इस तरह सोचने के लिए एक अन्य प्रमाण मौजूद है जो महत्त्वपूर्ण है। हड़प्पा की खुदाई में एक मुद्रा प्राप्त हुई है जिसमें एक देवता दिखाया गया है। यह देवता भैसों के सींग का मुकुट पहने बैठा है। यह एक गहरा संकेत है जो बताता है कि हड़प्पा की संस्कृति में भैसों के सींग वाला या भैंसों के मुकुट वाला कोई दिव्य पुरुष राजा या शूरवीर उस संस्कृति के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण या केंद्रीय चरित्र के रूप में माना जाता होगा। इस पुरुष या देवता या शूरवीर का चित्रण महिषासुर से समानता दिखाता है।

इसी के साथ एक अन्य महत्त्वपूर्ण सूत्र यह है कि गोण्डों का अपना धर्मचिह्न इस तरह बना है कि उसमें शिवलिंग की तरह एक पिण्डी मध्य में है और उसके दोनों ओर भैंस के सींग की तरह दो आकृतियाँ उभरी हुई हैं। इस आकार की समानता शिवलिंग से बनती है। अब अगर ध्यान से देखें तो हड़प्पा की सील और गोण्डी धर्मचिह्न और शिवलिंग के आधुनिक रूप में बहुत समानता है। यह समानता यह भी बताती है कि गोण्डी धर्मचिह्न असल में हड़प्पा के देवता और शिवलिंग के बीच की कड़ी है जिसमें महिषासुर के सींगों के प्रतीक अभी भी जड़े हुए हैं और बाद में शिवलिंग के आधुनिक रूप में इन्हें हटा दिया गया है।

इन प्रमाणों के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि सम्भवत: हड़प्पा में भी संभूसेक या महिषासुर का कोई पूर्ववर्ती रहा होगा या स्वयं संभूसेक या महिषासुर ही वह केंद्रीय चरित्र हैं अथवा महिषासुर की भाँति अन्य पूर्ववर्ती प्रतापी असुर या गोण्ड राजा एक राजमुकुट की तरह भैंस के सींगों का इस्तेमाल करते रहे होंगे। नीचे दिये चित्रों में एक समानता और उदविकासीय अनुक्रम देखा जा सकता है। प्रथम चित्र हड़प्पा के देव पुरुष का है जो भैंसों के सींग का मुकुट पहने है। दूसरा चित्र गोण्डी आदिपुरुष पारी कुपार लिंगो का है और तीसरा चित्र गोण्डवाना के वर्तमान पवित्र चिह्न का है। अगला चित्र वर्तमान में पूज्य शिवलिंग का है। यहाँ स्पष्ट होता है कि पारी कुपार लिंगो का चिह्न और उनका नाम खुद भी कालांतर में शिव की पिण्डी और लिंग बन जाता है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि पारी कुपार लिंगो बुद्धि मुद्रा में बैठे हैं जो योग की मुद्रा है। इस तरह यह संकेत मिलता है कि वे योग के प्राचीन ज्ञाताओं या जन्मदाताओं में से एक हो सकते हैं।

इसी के साथ हड़प्पन सीलों में जो अन्य चिह्न हैं उनकी गोण्डों के धार्मिक चिह्नों से समानता

08_jothe:Layout 1 7/25/2016 11:38 AM Page 122

नज़र आती है उदाहरण के लिए गोण्डों के सात प्रमुख गोत्र हैं जिन्हें देवों की संख्या के अनुसार बाँटा गया है। इन्हें एक से लेकर सात देव वाले गोण्ड कहा जाता है। यह सात देव हड़प्पा की सील में आदिपुरुष संभुसेक के और अन्य टोटेम चिह्नों के साथ हड़प्पा की सील पर स्पष्ट रूप से अंकित हैं। लेखक की बलाघाट खोजयात्रा में भी यही सात देव लांजी नामक स्थान पर गोण्डों के नेताम राजवंश के खँडहर हो चुके दुर्ग में भी पाई गयी।

ये प्रमाण पुरातत्व और इतिहास के प्रमाण हैं लेकिन इनसे भी कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण और जीवंत समाजशास्त्रीय और मानवशास्त्रीय प्रमाण भी हमारे पास हैं जो इस दिशा में निर्मित हो रहे आख्यान को लगभग स्थापित ही कर देते हैं। हमारे पास वे प्रमाण मौजूद हैं जिनके आधार पर संभुसेक और बड़ादेव या शिव एक ही ठहरते हैं। डॉ. कंगाली द्वारा निर्मित वेबसाइट http://jayseva.com/ पर यह प्रमाण देखे जा सकते हैं। अपने विषय से साम्य रखने वाले इनमें से कुछ प्रमाणों पर हम यहाँ ग़ौर करेंगे।

गोण्डों में एक विशेष त्यौहार मनाया जाता है जिसे 'संभुसेक नाका' या 'शिवजागरण' कहा जाता है।[27] यह शिव के जागरण के उपलक्ष्य में माघ पूर्णिमा के तेरह दिन बाद मनाया जाता है। गोण्डी मान्यता के अनुसार संभुसेक ने पंचखण्ड धरती के लोगों को सारा ज़हर ख़ुद पीकर बचाया था और इस दिन होश में आकर उन्होंने महान चेतना प्राप्त की थी। इस अर्थ में यह त्यौहार संभु जागरण त्यौहार भी कहलाता है। इसके पीछे विस्तार से जो कहानी दी गयी है उसके अनुसार संभुसेक एक सिद्ध योगी[28] और महावीर योद्धा थे जिनकी अनुमति के बिना कोई भी उनके प्रदेश में दाख़िल नहीं हो सकता था। उन्हें हराने के लिए आर्यों ने दक्ष पुत्री पार्वती को भेजा, लेकिन वे पार्वती स्वयं ही संभुसेक की शिष्या बन गयीं। इसी समय कोयवंशी गोण्डों और आर्यों में भयानक युद्ध चल रहा था, जिसमें आर्यों को कड़ी टक्कर मिल रही थी। युद्ध के किसी मोड़ पर आर्यों के प्रतिनिधि इंद्र, ब्रह्मा और विष्णु मिलकर गोण्डों के प्रतिनिधि संभुसेक के सामने समझौते का प्रस्ताव लेकर जाते हैं। समझौते के अनुसार एक सामूहिक भोज का आयोजन किया जाता है जिसमें दोनों पक्षों को माघ पूर्णिमा के दिन मिल कर भोज करना था। यह आर्यों की चाल थी जसके तहत वे संभुसेक और गोण्डों को ज़हर देना चाहते थे। संभुसेक ने अपने योगबल से यह जान लिया और भोज के समय अपने लोगों को भोजन से मना करके सारा भोजन खुद ग्रहण कर गये। इस प्रकार सर्प विष की अधिकता से वे तेरह दिन तक अचेत रहे। इस बीच उनकी सेनाओं ने आर्य सेना को बुरी तरह खदेड़ा और मारा। बाद में जिस दिन संभुसेक चैतन्य हुए उस दिन को उन्होंने त्यौहार की तरह मनाया।

इसी तरह 'शिमगा पण्डूम' मनाया जाता है जिसे होली या शिवमगौरा भी कहा जाता है। आज जिस तरह का हिंदुओं का होली का त्यौहार है यह उससे भिन्न है। इसके संबंध में डॉ. अनुराधा पाल[29] ने निम्नलिखित विवरण दिया है। उल्लेखनीय है कि यह विवरण उनकी जिस शोध पर आधारित है वह डॉ. कंगाली के मार्गदर्शन में ही किया गया है :

> इसे फाल्गुन पूर्णिमा की शाम को मनाया जाता है ... त्यौहार के पंद्रह दिन पहले गाँव के लड़के शंभू गौरा की जय-जयकार करते हुए लकड़ियाँ आदि एकत्र करते हैं तथा गाँव की पूर्वी सीमा पर ढेर लगाकर घर लौट आते हैं। पूर्णिमा की शाम को गाँव का भूमका[30] अन्य लोगों के साथ जाकर आरती उतारता है। ज़मीन में एक गहरा गड्ढा खोदा जाता है, इसमें पीसी हल्दी तथा पिसे चावल

---

[27] http://jayseva.com/shiv-jagran-pooja/.

[28] पुन: यहाँ किसी ज्ञात ब्राह्मण योगी से पहले संभुसेक नामक श्रमण योगी का ज़िक्र आ रहा है (जो यह संकेत करता है कि योग सम्भवत: एक ब्राह्मण परम्परा नहीं बल्कि प्राचीन श्रमण परम्परा है.

[29] पॉल (2014).

[30] मुख्य पुजारी.

08_jothe:Layout 1 7/25/2016 11:38 AM Page 123

एक सामूहिक भोज का आयोजन किया जाता है ... यह आर्यों की चाल थी जसके तहत वे संभुसेक और गोण्डों को ज़हर देना चाहते थे। संभुसेक ने अपने योगबल से यह जान लिया और भोज के समय अपने लोगों को भोजन से मना करके सारा भोजन खुद ग्रहण कर गये। इस प्रकार सर्प विष की अधिकता से वे तेरह दिन तक अचेत रहे। इस बीच उनकी सेनाओं ने आर्य सेना को बुरी तरह खदेड़ा और मारा। बाद में जिस दिन संभुसेक चैतन्य हुए उस दिन को उन्होंने त्यौहार की तरह मनाया।

और लोहे के कण बिखेरे जाते हैं। तब इस स्तम्भ को पीसी हल्दी व पिसे चावल से लेपा जाता है। तब इस स्तम्भ को गड्ढे में स्थापित कर इसकी पूजा की जाती है। अन्य सभी लकड़ियों को इस केंद्रीय स्तम्भ के सहारे लगा दिया जाता है, तथा इसे जलाया जाता है। गेहूँ के आटे से बनी पार्वती की प्रतिमा को शंभू-गौरा की जय जयकार के बीच अग्नि में रखा जाता है। इसके साथ शिवमगौरा गीत गाया जाता है। इस प्रकार गाते हुए पाँच परिक्रमाएँ अग्नि के चारों ओर घड़ी की सुई की विपरीत दिशा में लगाई जाती है। इसी बीच एक व्यक्ति संभु के वस्त्रों में सज कर हाथ में त्रिशूल लिए आता है तथा त्रिशूल से अग्नि पर आक्रमण करता है। फिर जय-जयकार के बीच सभी लोग अग्नि के चारों ओर सात फेरे लेते हैं और सारी रात जागरण करते हैं तथा संभु गौरा की प्रशंसा में गीत गाते है।[31]

इसका संबंध शिव और गौरा के प्रणय से है। इसके साथ जुड़े अन्य विवरण हिंदू मिथकों में दिये गये मिथकों से भिन्न हैं और असल में उन मिथकों में छूट रही कड़ियों और स्वाभाविक रूप से उमड़ रहे प्रश्नों का उत्तर देते हैं। उदाहरण के लिए ब्राह्मणी हिंदू मिथक कहता है कि दक्ष प्रजापति ने यज्ञ का आयोजन किया और शिव को नहीं बुलाया इसीलिए रुष्ट होकर पार्वती के आदिरूप सती ने उस यज्ञ में कूद कर प्राण त्याग दिये। लेकिन अनुराधा पॉल के अनुसार गोण्डी मिथक कहता है कि संभुसेक (शिव) को मोहित कर परास्त करने के लिए पार्वती को भेजा गया था, जो स्वयं ही संभुसेक से मोहित होकर उनकी शिष्या बन गयीं। इसका बदला लेने के लिए आर्यों ने पार्वती को मारने का निश्चय किया। दक्ष प्रजापति ने एक महायज्ञ का आयोजन किया और सभी आर्य राजाओं को निमंत्रित किया लेकिन शंभू को नहीं किया इसलिए वे यज्ञ में नहीं गये। इस कारण पार्वती को अकेले जाना पड़ा। यज्ञ में उनका अपमान किया गया और विरोध करने पर उन्हें अग्नि में धकेल दिया गया। उनके साथ उनके रक्षकों का जो दल गया था वह हताश होकर शिवमगौरा! शिवमगौरा! चिल्लाते हुए लौट आया। बाद में कथा कहती है कि कुपित होकर शिव ने दक्ष के महल पर अपनी तीसरी आँख खोलकर हमला किया और उसे जला कर राख कर दिया। इसीलिए गोण्डी लोग इस कहानी में बताए अनुसार गौरा की राख अपने माथे पर मलते हैं। और, जिन आर्यों ने उन्हें इतना दु:ख दिया उनका विनाश करने की शपथ लेते हैं।

आगे अनुराधा पॉल लिखती हैं कि शिवमगौरा शब्द का अर्थ इस प्रकार है : शिव

[31] पॉल (2014) : 63.

08_jothe:Layout 1 7/25/2016 11:38 AM Page 124

(शंभू)=(ओम)+ गौरा का। शिव+ओम = ले जाओ+गौरा=पार्वती। शिवमगौरा का अर्थ है शंभू, गौरा को ले जाओ।[32]

असुर, गोण्ड, बुद्ध, रविदास और कबीर

डॉ. कंगाली अपने विराट अध्ययन से जिस निष्कर्ष पर पहुँचे वह असुर (लोकायत) दर्शन और गोण्डी दर्शन सहित बौद्ध दर्शन में एक समानता स्थापित करता है। स्वयं उनके शब्दों में :

> गोण्डी पुनेम दर्शन और बुद्ध के विचारों में काफ़ी समानता झलकती है। पारी कुपार लिंगो ने प्राकृतिक शक्ति पर्सापेन (बुढाल पेन, फड़ा पेन, सज़ोरपेन, सिंगाबोंगा पेन, भिलोटापेन) रूपी सल्लाँ गांगरा (ऋण-धन) शक्ति को माना है, तो बुद्ध ने भी प्राकृतिक शक्ति को ही सर्वोच्च शक्ति माना है। भौतिक जगत की निर्मिति स्वयंसिद्ध है किसी ईश्वर पर उसका अस्तित्व निर्भर नहीं है ऐसा पारी कुपार लिंगो का मत है, तो ठीक ऐसा ही बुद्ध का भी दर्शन है। पारी कुपार लिंगो ने गोंगोओं (देवी-देवताओं) की शक्ति को पूर्वजों के रूप में मान्य किया है, तो बुद्ध ने भी ठीक इसी तरह देवताओं का अस्तित्व मान्य किया है। परंतु उन्होंने कोई कर्त्ता शक्ति या ईश्वर के रूप में नहीं माना है ... पारी कुपार लिंगो का मार्ग त्रिशूल मार्ग है, तो बुद्ध का त्रिशरण मार्ग है। पारी कुपार लिंगो ने अपने सगे शिष्यों को पाँच कर्त्तव्य दिये हैं, तो बुद्ध ने पंचशील मार्ग प्रतिपादित किया है। पारी कुपार लिंगो ने प्राकृतिक न्याय तत्त्व पर आधारित मुंजोक्क सिद्धांत बताया है तो बुद्ध ने अहिंसा सिद्धांत प्रतिपादित किया है।[33]

डॉ. कंगाली द्वारा यह समरूपण और इस प्रकार की समानता देखने का यह आग्रह दार्शनिक और धार्मिक क्रमविकास को देखने दिखाने वाले गम्भीर विमर्शों के लिए विश्वसनीय न भी हो, तो भी इसकी दिशा और मंशा से बहुत कुछ सिद्ध होता है। सबसे पहली और बड़ी बात तो यह कि डॉ. कंगाली के रूप में गोण्डी धर्म के ज्ञात इतिहास के सबसे बड़े विद्वान ने बुद्ध के दर्शन और कुपार लिंगो के दर्शन में समानता देखने का प्रयास किया है। यह अचानक ही नहीं हुआ होगा। इसके अपने धार्मिक, कर्मकाण्डीय, ऐतिहासिक और मिथकीय प्रमाण उन्होंने ढूँढे होंगे। इनमें से कुछ सबसे महत्त्वपूर्ण प्रमाणों को उनके विस्तार में हम पिछले पृष्ठों में देख भी आये हैं।

अब इतने विमर्श और विश्लेषण के बाद असुरों, कोयवंशीय गोण्डों, बौद्धों, कबीरपंथियों और रैदासियों में एक दार्शनिक एकता स्थापित हो जाती है। मध्य प्रदेश के मालवा निमाड़ क्षेत्र में कबीरपंथ का गहराई से अध्ययन करने वाली प्रोफ़ेसर लिंडा हेस ने स्पष्ट किया है कि कबीर की वेद विरुद्ध क्रांति असल में बुद्ध की क्रांति से अनिवार्य रूप से जुड़ती है।[34] इसी तरह गेल ओमवेट भी बताती हैं कि अन्य विद्वानों ने जो काम किया है (जैसे कि इलिनॅर ज़िलियॅट और ए.एच. सालुंखे) उनकी रिसर्च आगे चलकर चोखामेला और तुकाराम को भी विद्रोही बौद्ध क्रांति के अधिक नज़दीक बताती है। इस अर्थ में स्वामी अछूतानंद का उल्लेख करना महत्त्वपूर्ण होगा, हालाँकि स्वामी अछूतानंद बुद्ध की बजाय रविदास के अधिक पक्षधर थे। उन्होंने रविदास को केंद्र में रखकर रविदास के नाम से जुलूस और समारोह आरम्भ किये और आदि हिंदू महासभा की स्थापना की। असल में यह संस्था उनके आंदोलन का एक राजनीतिक घटक थी।[35] स्वामी अछूतानंद के उत्तराधिकारी आचार्य ईश्वरदत्त मेधार्थी (1900-1971) हुए। उन्होंने भी इसी विचार को और अधिक गहरे से बुना और अपनी एक लघु पुस्तिका में भारत के आदिवासी पूर्वजन और संत धर्म में आदि हिंदू की अवधारणा को अधिक मज़बूती

---

[32] वही : 64.
[33] कंगाली (2011) : 19-20.
[34] हेस (2002)
[35] गुप्तू (1993) : 277-298.

08_jothe:Layout 1 7/25/2016 11:38 AM Page 125

से पेश किया। आचार्य मेधार्थी की प्रस्तावना यह थी कि संत धर्म इस देश का मूल धर्म था जो कि समता, सहयोग और बंधुत्व पर आधारित था। प्राचीन काल में जिसे सनातन धर्म कहा जाता है वह असल में संत धर्म था। इस तर्क से चलते हुए वे आगे बौद्ध धर्म के साथ संत धर्म की एकता सिद्ध करने का प्रयास करते हैं और इस क्रम में वे यह भी कहते हैं कि बुद्ध ने असल में सब संतों को बुद्धों के रूप में निरूपित किया और पहचाना है इसलिए बुद्ध असल में प्राचीन संत धर्म की ही परम्परा में हैं। यह जानकार आश्चर्य होता है कि डॉ. आम्बेडकर के पूर्व आचार्य मेधार्थी और प्रोफ़ेसर पी.एल. नरसू (1911) बौद्ध धर्म तक पहुँच चुके थे। प्रोफ़ेसर नरसू की पुस्तक *बौद्ध धर्म का सार* की भूमिका लिखते हुए स्वयं डॉ. आम्बेडकर ने कहा है कि यह बौद्ध धर्म पर अब तक की सबसे अच्छी पुस्तक है। प्रोफ़ेसर नरसू[36] आदि हिंदू या संत धर्म जैसी किसी धारा का उल्लेख नहीं करते और ख़ालिस बुद्ध की शिक्षाओं और बौद्ध दर्शन के आधार पर बौद्ध धर्म को मानव मात्र के लाभ के लिए एक अच्छा धर्म निरूपित करते हैं। लेकिन आचार्य मेधार्थी, जो स्वयं पिछड़ी जाति से थे, का प्रयास अंत में यह बताता है कि बुद्ध ने जीवन भर जो भी सिखाया वह असल में संत धर्म की ही शिक्षाएँ थीं। इसीलिए मेधार्थी का आग्रह और सुझाव था कि संत धर्म के अनुयायियों को बुद्ध की शिक्षाओं पर विशेष ध्यान देना चाहिए।[37] मेधार्थी आगे चल कर डॉ. आम्बेडकर के पाली भाषा के शिक्षक भी बने। आचार्य मेधार्थी ने एक स्कूल भी चलाया जिसके भ्रमण के लिए स्वयं डॉ. आम्बेडकर 1940 में गये थे।[38] ज़ाहिर है कि आम्बेडकर के पूर्व भी अछूत और मूलनिवासी चिंतकों में बौद्ध धर्म के प्रति एक स्वागत-भाव निर्मित हो चुका था। इसीलिए डॉ. आम्बेडकर द्वारा 14 अक्टूबर 1956 को बौद्ध धर्म अंगीकार करने का इतना व्यापक असर हुआ कि कानपुर के दलितों ने इस पहल को हाथोंहाथ लिया। न केवल कइयों ने बौद्ध धर्म को अपनाया और भविष्य में आजीवन बुद्ध के संदेश के लिए समर्पित हो गये, बल्कि हिंदू धर्म के देवी देवताओं को भी बाईस मंदिरों से निकाल बाहर करके उन्हें बुद्ध के मंदिरों में रूपांतरित कर दिया।[39] संत धर्म को बौद्ध धर्म से समान दिखा कर एक बड़ा संकेत दिया गया है। असल में बुद्ध की समतावादी और वर्ण व्यवस्था विरोधी प्रज्ञा और रविदास की प्रज्ञा में समानता ही इस प्रयास की प्रेरणा रही होगी, ऐसा माना जा सकता है। इसीलिए कई दलित चिंतक रविदास को बौद्ध धर्म से प्रेरित संत बताते हैं।[40] स्वामी अछूतानंद, आचार्य मेधार्थी और भदंत बोधानंद महास्थविर के अनेक प्रयास अनेक दिशाओं में जाते हैं, लेकिन फिर भी उनकी चिंतन धारा और मूलनिवासियों के बारे में उनकी मान्यताएँ हमारे विषय के लिए प्रासंगिक हैं।

स्वामी अछूतानंद ने आर्य श्रेष्ठता के दावे को ख़ाारिज किया और बताया कि आर्य कोई उन्नत या विकसित संस्कृति नहीं थे, बल्कि यहाँ के मूलनिवासी उनसे अधिक उन्नत थे।[41] यह एक मान्यता हमारे लिए वह सब कह डालती है जो अन्य मूलनिवासी या असुर आंदोलन सिद्ध करना चाहते हैं। इसी तरह की स्थापना और प्रस्तावना डॉ. आम्बेडकर के पूर्व भदंत बोधानंद महास्थविर (1874-1952) द्वारा भी दी गयी है। उन्होंने भी इसी अर्थ में मूलनिवासी या स्थानीय सभ्यता के आर्य सभ्यता से अधिक उन्नत होने का दावा किया।[42] *अछूत कौन थे?* के लेखन के बहुत पहले ही महास्थविर का कहना था कि मूलनिवासी भारत के वास्तविक निवासी थे, और वास्तव में आजकल के अछूत

---

[36] नरसू (2010).
[37] मेधार्थी (1939).
[38] बेल्विन्कल एम (2004) : 245-66 .
[39] लिंच (1969) : 119-201.
[40] ज़िलियॅट, मोकाशी-पुणेकर (2005).
[41] ओमवेट (1994).
[42] साथी (1999).

08_jothe:Layout 1 7/25/2016 11:38 AM Page 126

और पिछड़े वर्ग के लोग यही हैं।[43] अनेक लोग जो मानते हैं कि डॉ. आम्बेडकर अचानक ही *शूद्र कौन थे?* के उत्तर पर पहुँच गये, उन्हें अन्य विद्वानों का काम भी देखना परखना चाहिए। स्वामी अछूतानंद और भदंत बोधानंद सहित चंद्रिका प्रसाद जिज्ञासु उनमें से महत्त्वपूर्ण हैं। भदंत बोधानंद की एक महत्त्वपूर्ण रचना *मूल भारतवासी और आर्य* कभी प्रकाशित नहीं हो सकी, लेकिन इसमें जो सिद्धांत और दिशा दी गयी थी उसने हज़ारों लोगों को प्रभावित किया। उनकी इस स्थापना और इसी दिशा के विमर्श ने मूलनिवासी शब्द को इतना महत्त्वपूर्ण बना दिया। इसके बाद में जो प्रभाव पड़े, वे अपने आप में एक इतिहास हैं।[44]

यह जानना अपने आप में रोचक है कि अछूत और अंत्यज, जो बाद में दलित कहलाए, में से सबसे प्रगतिशील और समर्थ समुदाय और उनके चिंतक भक्ति को बौद्ध धर्म के क़रीब ला रहे हैं और रविदास को बुद्ध से प्रेरित सिद्ध कर रहे हैं। इस प्रकार रविदास, कबीर और अन्य भक्तिकालीन संतों के निर्गुण को बुद्ध के शून्य से जोड़ा जा रहा है। एक दार्शनिक या धार्मिक संश्लेषण के स्तर पर यह प्रयास कितना भी वैध या कारगर हो या न हो, लेकिन यह प्रयास इतना तो अवश्य बताता है कि अछूतों में परलोकवादी ब्राह्मण या आर्य धर्म के प्रति एक तिरस्कार का भाव प्रबल रूप ले चुका था और उसकी परिणति इस प्रकार के साहित्यिक दार्शनिक प्रयासों में होने लगी थी। ये प्रयास यह भी बताते हैं कि शोषण से पीड़ित समाज अंतिम रूप से भाववादी दर्शन के विरुद्ध भौतिकवादी मान्यताओं के पक्ष में लामबंद हो रहे हैं। चार महाभूतों को आधार बनाने वाला बौद्ध दर्शन और लोकायत या असुर दर्शन आधुनिक समय के अछूतों के सबसे प्रतिभाशाली विद्वानों को अपनी तरफ़ हज़ारों साल बाद फिर से आकर्षित कर रहा है। इसी क्रम में दलितों और अछूतों की ही तरह अब पिछड़ों और मूलनिवासियों की तरफ़ से भी अपनी खोई हुई संस्कृति को दुबारा खोजने का प्रयास आरम्भ हुआ है। इसे महिषासुर आंदोलन के आईने में देखा जा सकता है।

महिषासुर आंदोलन और मिथकीय पुनर्पाठ

इस विस्तार में जाने के बाद अब हम महिषासुर आंदोलन और इसके साथ आरम्भ हुए मिथकीय पुनर्पाठ को उसके व्यापक और सही संदर्भ में देख सकते हैं। महिषासुर आंदोलन ऊपर वर्णित दलदल में सतह पर नज़र आने वाला एक महत्त्वपूर्ण सबूत है जिसके सहारे अन्य सभी परम्पराओं के उद्विकासीय संघर्ष और षड्यंत्रों को भी देखा जा सकता है। अभी तक जो साक्ष्य और तथ्य महिषासुर के संबंध में हैं, वे मूलत: मिथकीय विवरणों और बंगाल, ओडीशा, झारखण्ड इत्यादि में फैले मूलनिवासी व असुर समुदाय की लोक कहावतों और किंवदंतियों सहित उनके पूजा विधानों के विश्लेषण पर आधारित हैं। यह एक महत्त्वपूर्ण बात है। इसका यह अर्थ हुआ कि आज भी छोटानागपुर के असुरों में या उत्तर प्रदेश के महोबा ज़िले के महिषासुर मंदिर के आसपास के या छत्तीसगढ़ और झारखण्ड के अनेक मूलनिवासी समुदायों में महिषासुर एक सच्चाई है।

पश्चिम बंगाल के उत्तरी इलाक़े में जलपाईगुड़ी ज़िले में स्थित अलीपुरदुआर के पास माझेरडाबरी चाय बाग़ान में रहने वाली एक जनजाति के लोग दुर्गापूजा के दौरान मातम मनाते हैं। इस दौरान वे न तो नये कपड़े पहनते हैं और न ही घरों से बाहर निकलते हैं। ये लोग असुर हैं और महिषासुर को अपना पूर्वज मानते हैं।[45] इस प्रकार जो केस स्टडीज़ और ख़बरें आ रही हैं, वे आज भी मौजूद असुर समुदाय को उजागर कर रहे हैं। उनकी मिथकीय व धार्मिक मान्यताओं के सूत्र आज भी आसानी से ढूँढे जा

---

[43] क्षीरसागर (1994).

[44] विवेक कुमार (2006).

[45] बीबीसी हिंदी (2015).

08_jothe:Layout 1 7/25/2016 11:38 AM Page 127

कुछ विद्वान तो आर्य आक्रमण सिद्धांत को आधार बनाकर यह भी सिद्ध करते हैं कि आर्यों का दुर्गा का मिथक भी असल में सुमेरियन/मेसोपोटामियन मिथकों से लिया गया है। सुमेरियन लोगों में इनन्ना नामक युद्ध और उर्वरता की देवी की मान्यता थी और यह देवी भी सिंह पर सवारी करती थी।

सकते हैं। उनकी अपनी मान्यताओं में महिषासुर एक नायक हैं, और दुर्गा खलनायिका हैं। इसी के मुताबिक़ माझेरडाबरी के असुर दुर्गा और महिषासुर के संग्राम को अलग नज़रिये से देखते हैं :

> उनमें इस बात का गुस्सा है कि दुर्गा ने ही महिषासुर को मारा था। इसी वजह से पूरा राज्य जब खुशियाँ मनाने में डूबा होता है तब यह लोग मातम मनाते रहते हैं। इस जनजाति के बच्चे मिट्टी से बने शेर के खिलौनों से खेलते तो हैं, लेकिन उनमें से किसी के कंधे पर सिर नहीं होता। बच्चे शेरों की गर्दन मरोड़ देते हैं। यह दुर्गा की सवारी जो है। सात साल का आनंद असुर ऐसा ही एक खिलौना दिखाते हुए कहता है, 'मैं एक असुर हूँ। शेरों से मुझे सख़्त नफ़रत है। इसलिए पहले दिन ही मैंने इसकी गर्दन मरोड़ दी।'[46]

इसी तरह अन्य स्थानीय जनजातीय समुदाय रावण और मेघनाद को पूजते हैं। उन्हें अपना पूर्वज मानते हैं और उनकी मृत्यु का शोक मनाते हैं। महिषासुर सहित अन्य सभी राक्षसों और दैत्यों की हत्या से जुड़े ब्राह्मणी मिथक एक आयामी और कृत्रिम लगते हैं और उनके विस्तार में जाने पर यह प्रतीत होता है कि उन्हें छलपूर्वक मारा गया है। प्रयास करने पर भी यह स्पष्ट नहीं होता कि असुरों को किस अपराध के लिए मारा जा रहा था। उनकी हत्याओं के जो कारण मिथकों में बताए जा रहे हैं, वे कहते हैं कि आर्यों के यज्ञ को बाधित करने के अपराध के दण्ड स्वरूप उन्हें मारा गया। इन सभी मिथकीय कथाओं में और विशेष रूप से महिषासुर के मिथक में कुछ छिपाया गया है। आज भी असुर जनजाति के लोगों की यही मान्यता है। महिषासुर न केवल असुर जनजाति से, बल्कि यादव व अहीर जैसी पिछड़ी जातियों से भी आसानी से जुड़ते प्रतीत होते हैं। जैसा कि प्रेम कुमार मणि[47] बताते हैं :

> महिष का मतलब भैंस होता है। महिषासुर यानी महिष का असुर। असुर मतलब सुर से अलग। सुर का मतलब देवता। देवता मतलब ब्राह्मण या सवर्ण। सुर कोई काम नहीं करते। असुर मतलब जो काम करते हों। आज के अर्थ में कर्मी। महिषासुर का अर्थ होगा भैंस पालने वाले लोग अर्थात् भैंस पालक। दूध का धंधा करने वाला। ग्वाला। असुर से अहुर और अहुर से अहीर भी बन सकता है।

शब्दों के आधार पर यह समानता और उस समानता का यह अर्थ अचम्भित नहीं करता। असल में भारतीय मिथक और भारतीय सामाजिक परम्पराएँ जिस तरह से आकार लेती रही हैं, उनमें इस तरह के अर्थों के सत्य होने की पूरी सम्भावना होती है। कुछ विद्वान तो आर्य आक्रमण सिद्धांत को आधार बनाकर यह भी सिद्ध करते हैं कि आर्यों का दुर्गा का मिथक भी असल में सुमेरियन/मेसोपोटामियन मिथकों से लिया गया है। सुमेरियन लोगों में इनन्ना नामक युद्ध और उर्वरता की देवी की मान्यता थी और यह देवी भी सिंह पर सवारी करती थी।[48]

ऐसा माना जाता है कि इसी देवी के मिथक ने ईरान, सिंधु सभ्यता और बाद में अन्य भारतीय

---

[46] वही.

[47] प्रमोद रंजन (2014) : 11.

[48] http://www.examiner.com/article/inanna-dumuzi-and-solomon.

08_jothe:Layout 1 7/25/2016 11:38 AM Page 128

महाद्वीप के मिथकों को आकार दिया होगा।[49] अगर यह सत्य है तो यह माना जा सकता है कि आर्यों ने अपने शत्रुओं का छलपूर्वक नाश करते हुए अपने प्राचीन मिथकों की कथाओं में ही कोयवंशीय गोण्डों असुरों और अन्य भारतीय मूलनिवासियों को खलनायक की तरह शामिल कर लिया। इन खलनायकों के नाश के लिए जिस दुर्गा की कल्पना की गयी, उसकी प्रेरणा उनकी देवी इनन्ना में ही थी। इसीलिए अलग-अलग कालखण्डों में अलग-अलग मूलनिवासी शूरवीरों के ख़िलाफ़ इस देवी तथा इनके जैसी अन्य देवियों का मिथक खड़ा किया गया। चूँकि आर्य गौर वर्ण और तीखे नक़्श वाले थे इसलिए आज भी इन देवियों की वैसी ही मूर्तियाँ बनाई जाती हैं। लेकिन संभुसेक के मूल चरित्र से जुड़ी कलि कंगाली, जो मेघनाद की आराध्या के अर्थ में महाकाली जैसी प्रतीत होती हैं, को काली और विकराल चित्रित किया गया है। यहाँ भी ग़ौर से देखने पर एक अन्य षड्यंत्र उजागर होता है। वह है गोण्डों की पूज्य दाई कलि कंगाली को भी काली के रूप में घृणित बनाने का शुरुआती प्रयास और बाद में उन्हें भी उसी तरह आत्मसात् कर लेना जिस तरह संभुसेक को महादेव के रूप में कर लिया गया।

इनन्ना देवी के लिए भारतीय संदर्भ में पक्ष या विपक्ष में प्रमाण जुटाने की उतनी सुविधा नहीं है। लेकिन इसके विपरीत भारतीय गोण्डों में संभुसेक पर हमले और असुर व अन्य जनजातियों में महिषासुर की हत्या के बारे में वाचिक परम्परा में जो किंवदंतियाँ और लोक कहावतें हैं वे आसानी से एक स्थानीय आख्यान को उभारती हैं। यह स्थानीय आख्यान बहुत अर्थों में दूसरी दिशा से देवी इनन्ना के मेसोपोटामियन या सुमेरियन सभ्यता के मूल का होने का संकेत देता है। जिस अर्थ में इस देवी को वहाँ उर्वरता और युद्ध की देवी माना गया है उसी के समानांतर अर्थ में उन्हें भारत में भी आर्यों द्वारा स्थापित किया जा रहा है। इसीलिए गोण्डों और असुरों की वाचिक परम्परा से उभर रहा यह आख्यान वास्तव में आर्य-गोण्ड और बाद में आर्य-असुर संघर्ष की सबसे महत्त्वपूर्ण और निर्णायक घटना बन जाती है। अब चूँकि महिषासुर गहराई से गोण्डों और असुरों की धार्मिक दार्शनिक परम्परा के लिए भी एक महत्त्वपूर्ण कड़ी बनकर उभरते हैं इसीलिए महिषासुर आंदोलन के निहितार्थ बहुत बड़े हैं और इसी कारण इसमें भारत के धार्मिक-दार्शनिक विमर्श को हिला देने की इतनी विराट ताक़त है।

उपसंहार

महिषासुर आंदोलन या इसके साथ आरम्भ हुए मिथकीय पुनर्पाठ का आंदोलन कोई छोटी सी या अकेली पहल नहीं है। इसकी ऐतिहासिक दार्शनिक और धार्मिक सांस्कृतिक पृष्ठभूमि बहुत विराट है और इस एक आंदोलन ने जिन खो गयी कड़ियों को आपस में जोड़ा है वैसा भारतीय इतिहास में बहुत कम हुआ है। अन्य शोध और मिथक किन्हीं खो गयी परम्पराओं की दार्शनिक, धार्मिक या भाषागत समानता के आधार पर सिद्ध किये जाते रहे हैं। लेकिन पहली बार एक समाजशास्त्रीय और मानवशास्त्रीय आधार पर ठोस दार्शनिक विमर्श को केंद्र में रखने वाला आंदोलन उभर रहा है। असुरों और गोण्डों की बची हुई आबादी और उनके साथ उनकी मिथकीय कथा में शामिल अन्य दलित पिछड़ी और मूलनिवासी जातियों से एक तरह का दार्शनिक और धार्मिक सांस्कृतिक संबंध निर्मित होता दिखाई दे रहा है। सबसे बड़ी बात यह है कि यह संबंध असल में प्राचीन भारत की सभी विद्रोही परम्पराओं को मूलनिवासी साबित करने की तरफ़ बढ़ रहा है।

अन्य विद्वानों के पूर्व में किये हुए शोध को देखें तो भी इस तरह की प्रवृत्तियाँ आकार लेती नज़र आती हैं। प्राचीन भारतीय भौतिकवाद के गहन अध्ययन से लोकायतिक अर्थात् प्राचीन असुरों और उनके बाद के बौद्धों के बीच में ऐतिहासिक क्रमविकास का एक सीधा संबंध निर्मित होता दिखाई देता है।

---

[49] वॉलपर्ट (2006).

08_jothe:Layout 1 7/25/2016 11:38 AM Page 129

प्रतीत होता है कि असुर या लोकायतिक या मूल सांख्य या तांत्रिक दर्शनों को मानने वाले मूलनिवासी समुदायों में ही लोकायत के रूप में एक भौतिकवादी दर्शन ने आकार लिया और सम्भवत: यही श्रमण परम्परा के लिए एक दार्शनिक आधार बन कर प्रकट हुआ। साथ ही इसने इस लोक (इहलौकिक) के सुख की प्राप्ति (चार्वाक) और इस लोक के दु:ख की निर्जरा (बौद्ध) जैसे दर्शनों को भी ठोस भौतिकवादी आधार दिये। सम्भवत: यही असुर जनजातीय लोकायत (जिसके मानने वाले सुदूर लंकावासी रावण और मेघनाद आदि भी थे) और जो तंत्र और मूल सांख्य की अपनी प्रवृत्तियों में आरम्भ में अल्पविकसित था, वही बाद में अपने पूर्णत: विकसित रूप अर्थात् बौद्ध धर्म के रूप में प्रकट हुआ। फिर संभूसेक और महिषासुर सहित असुरों की संस्कृति को छल से नष्ट करके ब्राह्मणवादी धर्म में आत्मसात् कर लिया गया। बाद में इसी तरीक़े से बुद्ध और कबीर को भी आत्मसात् कर लिया गया। यह एक ऐसा सूत्र है जो प्राचीन भौतिकवाद और आधुनिक बौद्ध रहस्यवाद सहित मध्यकालीन संतों के भक्ति आंदोलन को और उनके सनातन शत्रुओं को एक साथ एक सीधी रेखा में बाँध देता है।

इसी पूरी विमर्श यात्रा में यह लेख तीन दावे करना चाहता है। पहला, देव-असुर संग्राम के बहुत पहले ही आर्य और कोयवंशी गोण्ड संग्राम हो चुका था। दूसरा, गोण्डों के संभुसेक, असुरों के महिषासुर और ब्राह्मणी धर्म के महादेव एक ही व्यक्ति या संस्था हैं और आज के शिव या शंकर उनका विकृत व ब्राह्मणीकृत रूप हैं। तीसरा, श्रमण दर्शन और पारी कुपार लिंगो का पुनेम दर्शन आपस में जुड़े हुए हैं। बहुत बाद में गौतम बुद्ध ने इसी पुनेम दर्शन की आरम्भिक प्रवृत्तियों और मान्यताओं पर अपने विस्तृत दर्शन का भवन खड़ा किया। इसी कारण महिषासुर के मिथक सहित संभूसेक, गोण्डी धर्म, असुर व श्रमण व मातृसत्तात्मक या तांत्रिक या लोकायतिक दर्शनों पर और अधिक गहराई से शोध की आवश्यकता है। यह शोध बहुजन समाज की मूल संरचना और उसके ऐतिहासिक उद्विकास सहित उसके पतन की खोज है ताकि ब्राह्मणी या आर्य षड्यंत्र को उसकी सम्पूर्णता में देखा जा सके। यही शोध आज हमारी आँख के सामने चल रहे उसी सनातन षड्यंत्र को दुबारा उजागर करेगा। यह न केवल ऐतिहासिक अर्थों में उद्विकास और पतन की नयी तस्वीर उजागर करेगा, बल्कि भविष्य में ब्राह्मणवादी पाखण्ड के शमन के लिए प्रगतिशीलों और मुक्तिकामियों सहित सम्पूर्ण बहुजन समाज के सभी धड़ों को एक साथ संगठित भी करेगा। अंतत: भारत में एक निरीश्वरवादी प्रकृतिरक्षक मातृसत्तात्मक और इस लोक में भरोसा करते हुए परलोक को नकारने वाले वैज्ञानिक व समतामूलक समाज की स्थापना का आधार यही बनेगा।

संदर्भ

आर.के. क्षीरसागर (1994), *दलित मूवमेंट्स इन इण्डिया ऐंड इट्स लीडर्स,* एम.डी. पब्लिकेशंस, नयी दिल्ली.

ओवेन लिंच (1969), *द पॉलिटिक्स ऑफ़ अनटचेबिलिटी : सोशल मोबिलिटी ऐंड सोशल चेंज इन अ सिटी ऑफ़ इण्डिया,* कोलम्बिया युनिवर्सिटी प्रेस, न्युयॉर्क और लंदन.

ईश्वर दत्त मेधार्थी (1939), *भारत के आदिवासी पूर्वज और संत धर्म,* भारती वेद विद्यालय, कानपुर.

ए. कीथ (1925), *द रिलीजन ऐंड फ़िलॉसफ़ी ऑफ़ द वेदा ऐंड उपनिषद्स,* हार्वर्ड ओरिएंटल सीरीज़, खण्ड 31, केम्ब्रिज.

एम. बेल्विन्केल, (2004), 'रूट्स ऑफ़ आम्बेडकर्स बुद्धिज़म इन कानपुर', सुरेन्द्र जोंधाले, जोहान्नेस बेल्ज़ (सं.), *रिकंस्ट्रक्टिंग द वर्ल्ड : बी.आर. आम्बेडकर ऐंड बुद्धिज़म इन इण्डिया,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली.

एलिनॉर ज़िलियॅट और रोहिणी मोकाशी-पुणेकर (सं.) (2005), *अनटचेबल सेंट्स : एन इण्डियन फ़ेनोमेना,* मनोहर पब्लिकेशंस, नयी दिल्ली.

एस.एन. दासगुप्त (1922), *अ हिस्ट्री ऑफ़ इण्डियन फ़िलॉसफ़ी,* गगनदीप प्रकाशन, नयी दिल्ली.

क्रिस्टोफ़ वॉन फ़्युरेर-हैमेंड्राफ़, माइकेल यॉर्क और जयप्रकाश राव (1982), *ट्राइब्स ऑफ़ इण्डिया,* युनिवर्सिटी ऑफ़

08_jothe:Layout 1 7/25/2016 11:38 AM Page 130

केलिफ़ोर्निया प्रेस, न्युयार्क.

गेल ओमवेट (1994), *दलित्ज़ ऐंड द डेमोक्रेटिक रिवोल्यूशन : डॉ. आम्बेडकर ऐंड द दलित मूवमेंट इन कोलोनियल इण्डिया,* सेज पब्लिकेशन, नयी दिल्ली.

गेल ओमवेट (2003), *बुद्धिज़म इन इण्डिया : चेलेंजिंग ब्राह्मनिज़म ऐंड कास्ट,* सेज पब्लिकेशन नयी दिल्ली.

छेदीलाल साथी (सं.) (1999), *भदंत बोधानंद महास्थविर : जीवन और कार्य,* बुद्ध विहार, लखनऊ.

जॉर्ज. एम. विलियम्स (2003), *हैंडबुक ऑफ़ हिंदू माइथोलॅजी,* एबीसी-सीएलआइओ, सांता बारबरा.

डॉ. अनुराधा पॉल (2014), *गोण्ड उत्पत्ति, इतिहास तथा संस्कृति,* राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नयी दिल्ली.

डॉ. धर्मवीर (2013), *कबीर : खसम खुशी क्यों होई,* वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली.

देबी प्रसाद चट्टोपाध्याय (1992), *लोकायत : अ स्टडी इन एंशियेंट इण्डियन मैटेरियलिज़म,* पीपुल्स प्रकाशन, नयी दिल्ली.

धनंजय कीर, मालसे एवं फड़के (सं.)(2006), *फुले समग्र वांड्मय,* महाराष्ट्र सरकार प्रकाशन, मुंबई.

नंदिनी गुप्तू (1993), 'कास्ट ऐंड लेबर : अनटचेबल सोशल मूवमेंट इन अर्बन उत्तर प्रदेश इन अर्ली ट्वेंटियथ सेंचुरी', पीटर रॉब (सं.), *दलित मूवेमेंट्स ऐंड द मीनिंग्स ऑफ़ लेबर इन इण्डिया,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली.

प्रमोद रंजन (सं.)(2014), *महिषासुर,* दुसाध प्रकाशन, लखनऊ.

पी.एल. नरसू (2010), *द एसेंस ऑफ़ बुद्धिज़म,* दिव्यांश प्रकाशन, लखनऊ.

बी.आर. आम्बेडकर (1960), *हू वर द शूद्राज़ ? : हाउ दे केम टू बी द फ़ोर्थ वर्ना इन द इण्डो-आर्यन सोसाइटी,* ठेकर्स पब्लिशिंग, बॉम्बे.

----------(2009), *हिंदू धर्म की रिडल,* अनु. : डॉ. भदंत आनंद कौसल्यायन, गौतम बुक सेंटर, नयी दिल्ली.

बीबीसी हिंदी, http://www.bbc.com/hindi/india/2009/09/090927_festival_mourners_adas.shtml,11 दिसम्बर, 2015 को देखा गया.

मोतिरावण कंगाली (2002), *डिसाइफ़रमेंट ऑफ़ इंडस स्क्रिप्ट इन गोण्डी,* चंद्रलेखा कंगाली, नागपुर.

----------(2011), *डोंगरगढ़ की बम्लाई दाई बम्लेश्वरी,* चंद्रलेखा कंगाली, नागपुर.

----------(2011), *पारी कुपार लिंगो पुनेम दर्शन,* चंद्रलेखा कंगाली, नागपुर.

लिंडा हेस और सुखदेव थोरात (2002), *द बीजक ऑफ़ कबीर,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, न्युयार्क.

रॉस ऍफ़. (2008), *बुद्धिज़म* (बीस खण्ड), रौटलेज लाइब्रेरी एडिशन, रौटलेज, लंदन.

रोजालिंड ओ'हैनलोन (1985), *कास्ट, कॉन्फ़्लिक्ट ऐंड आइडियोलॅजी : महात्मा ज्योतिराव फुले ऐंड लो कास्ट प्रोटेस्ट इन नाइंटींथ-सेंचुरी वेस्टर्न इण्डिया,* केम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस, न्युयार्क.

लवली गोस्वामी (2014), *प्राचीन भारत में मातृसत्ता और यौनिकता,* दखल प्रकाशन, नयी दिल्ली.

विवेक कुमार (2006), *इण्डियाज़ रोरिंग रिवोल्यूशन : दलित असर्शन ऐंड न्यू होराइज़ंस,* गगनदीप पब्लिकेशन, नयी दिल्ली.

स्टीफ़न वॉलपर्ट (2006), *इन्साइक्लोपीडिया ऑफ़ इण्डिया,* चार्ल्स स्क्रिब्नेर्स संस, थॉमसन गेल, डेट्रॉइट.